

सुधार

१. 5



स्वामी विद्यानन्द 'वि. ह'

संस्थान-प्रकाशन-संख्या : ७१

भा. पु.

पा. क. वि.

विश्व-सुधार

(वेद के आलोक में)



स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

वेद-संस्थान,
अजमेर

सर्वाधिकार लेखकाधीन

प्रथम संस्करण : २,०००; कार्तिक, २०३२ वि; अक्टूबर, १९७५ ई



दो रुपए



प्रकाशक : वेद-संस्थान, बाबू मोहल्ला, व्यावर रोड, अजमेर-३०५००१
मुद्रक : प्रिन्ट हाउस, अजमेर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुशो पद्मादेवी प्रधानाचार्यो
पाणिनीय विद्यालय को
समर्पित
विषय-क्रम

वृत्त : —
वैद्वतानन्द

पृष्ठ-संख्या

१	अशोभन चित्र	१
२	अमानवीय स्थिति	४
३	सफलता का रहस्य	८
४	सुगन्धीकरण	११
५	सुधार की राह पर	१४
६	सार्वभौम साधना	१७
७	सज्जनतन्त्र	२३
	[सज्जनराज्य, सज्जन की परिभाषा]	
८	सज्जनीकरण	३०
९	महामन्त्र	४५
१०	एक गृह : एक परिवार	५६



विश्व सुधार

१ अशोभन चित्र



मैं सार्वभौमिकतावादी हूँ। सारी पृथिवी मेरा घर है, और पृथिवी पर निवास करनेवाला सारा मानवमण्डल मेरा परिवार है। मैं सार्वभौम हूँ। मैं किसी एक परिवार, समाज, वर्ग, सम्प्रदाय, वर्ण, जाति वा राष्ट्र की सीमाओं में सीमित नहीं रह सकता। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सार्वभौमिकता की रट में मैं उन व्यक्तियों की परवाह न करूँ जो मेरे साथ रहते हैं, उस समाज की सेवा न करूँ जिसका मैं एक सदस्य हूँ, उस राष्ट्र की सुधि न लूँ जिसका मैं एक नागरिक हूँ, और उस विश्व का आर्यकरण न करूँ जिसका मैं एक अङ्ग हूँ।

मैं देख रहा हूँ कि देखते देखते मेरा समाज, मेरा राष्ट्र और मेरा विश्व दिन-प्रतिदिन पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। प्रयत्न सुख के लिए किए जा रहे हैं मगर दुःख बढ़ रहा है। प्रयास गरीबी हटाने का है लेकिन हट अमीरी रही है। लक्ष्य समानता है किन्तु असमानता उग्र से उग्रतर होती जा रही है। पुकार चरित्रशोधन की है, किन्तु व्याप दुश्चारित्र्य रहा है। कपड़ों का उत्पादन बढ़ रहा है पर रुम्मान नग्नता की ओर है। घोषणाएं विश्वशान्ति की हैं पर तयारियां विश्व-विध्वंस की हैं।

स्वयं मेरी अपनी मातृभूमि में गत पच्चीस वर्षों से जो भयंकर पतन, ह्रास, चरित्रहनन और विनाश होता चला आ रहा

है वह दिल दहलानेवाला है। कभी कल्पना भी न थी कि अपने ही राज्य में अपनी ही द्वारा ऐसे वीभत्स काण्ड और ऐसे निर्लज्ज नृत्य किए जाएंगे। अंगरेजों के जाने के बाद से ही इस देश में जो आपाधापी मची है और जो कर्तव्यशून्यता व्यापी है उसने आज घोर अराजकता का रूप धारण कर लिया है। ग्राम, नगर, राजधानी, कहीं भी न जान और माल सुरक्षित है, न सतीत्व और सम्मान। चारों ओर आंखें फाड़-फाड़कर देखने पर भी भारत में शासन, अनुशासन और मर्यादापालन का कहीं नामो निशान दिखाई नहीं दे रहा है।

राजनीतिक पार्टियों की ओर निहारता हूं तो, शब्द के वास्तविक अर्थों में, किसी एक पार्टी को भी दूध की धुली नहीं कहा जा सकता है, और किसी भी पार्टी का कोई भी नेता बेदाग और बेलाग नहीं है। सभी के सब काम नोट, वोट, जेब और कुर्सी के लिए हो रहे हैं। किसी भी दल और नेता में निष्कलंक राष्ट्रनिष्ठा और निष्काम लोकसेवा की भावना नहीं है।

धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं की ओर देखता हूं तो अपने आपको उस घटाटोप अन्धकार में पाता हूं जिसमें निराशा की टकरन टकराकर आशा का मुंह फेर देती है। इनमें भी सर्वत्र गद्दियों की कठोर आसक्तियों, राजनीतिक आकांक्षा-पूर्तियों, क्षुद्र एषणाओं और लौकिक स्वार्थसिद्धियों की नारे-वाजियों और जयघोषों पर आधारित नित्य नए नए ड्रामे होते रहते हैं।

भारत के योगियों की ओर देखता हूं तो एक असह्य सड़ांध की दुर्गन्धि से जी घबराने लगता है, और लज्जा तथा ग्लानि से माथा झुक जाता है। जिस योग के आश्रय से कृष्ण ने अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना की थी, दुष्कृतों का दलन और साधुओं का रक्षण किया था, अन्याय का दलन और न्याय का

पल्लवन किया था उस योग के नाम पर आज भारत के तथा-
कथित योगी देश-विदेशों में चेलों की भरती करने और घन
बटोरने में लगे हुए हैं। योगी बनने से पहले जो दूटे-फूटे घरों
में रहते थे, योग की आड़ में वे योगाश्रमों के नाम से नामित
महलों में निवास कर रहे हैं, और निर्लज्जता के साथ अपने
अपने आश्रमों में अपनी अपनी पत्थर की मूर्तियां स्थापित कर
रहे हैं। जिस योग के आश्रय से दयानन्द ने असत्य, अधर्म,
अनर्थ, अनाचार, आडम्बर और अन्याय के दृढ़ दुर्गों को धरा-
शायी किया था और पराधीनता की बेड़ियों पर करारी चोट की
थी उसी के नामलेवा योगी आज योग की मिट्टी पलीद कर रहे
हैं और वीतरागिता की आड़ में चुनौतियों का मुक़ाबला करने से
कतरा रहे हैं।

धर्म, योग, सेवा और संन्यास जनपोषण और विश्वकल्याण
की सुपावन साधें न रहकर जनशोषण के सहज पेशे बनते चले
जारहे हैं। अनेक लुटेरे 'ब्रह्म' और ब्रह्मावतार बनकर भोली
जनता को पापाचारों में फंसा रहे हैं।

कौमार्य, दाम्पत्यशुचिता, अर्थशुचिता, चरित्रशुचिता,
अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय,
धर्माचरण, प्रभुपरायणता, आदि दिव्य सम्पदाएं, जिन पर
आर्यावर्त की आर्यता और भारतवर्ष की भारतीयता गर्ज करती
थी और जिनके कारण संसार इस मही का और इस मही के
वासियों का समादर और सत्कार करता था, तीव्र गति से लुप्त
होती जा रही हैं। विश्व के अन्य सब देशों की तरह, मेरी यह
मातृभूमि, जहां वेद का अवतरण और मानवता का जन्म हुआ
था, व्यसनों और विलासों की रङ्गभूमि बन गई है। क्या मैं
और मेरे साथी यह सब भूक दर्शक की तरह देखते, नपुंसक की
तरह सहते और असहायों की तरह जमाने की शिकायतें करते

करते ही दुनिया से चल बसगे ? कम से कम मेरे लिए अब यह स्थिति असह्य है क्योंकि वेद-मां मुझसे कह रही है—
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्व यजुर्वेद २७.६
(अग्ने) ! (विश्वा हि दुरिता) सब ही बुराइयों को/का (सहस्व) मुक्ताबला कर ।

शौला वन और फूंक दे अब पाप के अम्बार को ।
.. उठ, बनादे धाम पावन अपने इस संसार को ॥
और, क्षेमानन्द 'राहत' के शब्दों में
ऐ मिट्टी के पुतले ! तुझको क्यों इतना व्यासङ्ग ?
क्या परवाह, ऐ अमर खिलाड़ी ! मचे दुतर्का जङ्ग ॥
अग्ने ! कर अब तू मुक्ताबला,
जगती के सारे दुरितों का ।

२ अमानवीय स्थिति

त्रितः कूपे ऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।

ऋग्वेद १.१०५.१७

- १) (त्रितः कूपे अव-हितः) त्रित कुए में पड़ा हुआ [है] ।
- २) वह (देवान् हवते ऊतये) देवों को पुकार रहा है रक्षा के लिए, निकाले जाने के लिए ।

त्रित कुए में गिर गया है । वह पुकार कर रहा है, 'देवो ! मुझे निकालो ।' कोई समुद्र में गिर जाए तो वह हाथ-पांव मारकर, तैरता हुआ किनारे लग सकता है । नदी में गिरा तैर-कर किनारे पर पहुंच सकता है । कितना भी बढ़िया तैराक क्यों न हो, यदि वह कूप में गिर गया है तो, कितने भी हाथ-पैर मारने पर, वह स्वयं उससे बाहर नहीं निकल सकता । इसी

लिए त्राण के लिए वह देवों को पुकारता है ।

कुविचार, कदाचार [कु-आचार] कदाहार [कु-आहार], इन तीन अभिशापों से जो ग्रस्त हो उसे त्रित कहते हैं । प्रत्येक वह व्यक्ति जो इन तीन दोषों से दूषित है त्रित है । कुविचार, कदाचार और कदाहार ने सारे संसार को पतन के गहरे कूप में गिरा दिया है, और प्रयत्न करने पर भी वह उसमें से निकल नहीं पारहा है । पृथिवी चीत्कार कर रही है, 'देवो ! आओ । हमें कूप में से बाहर निकालो ।'

कौन हैं और कहां हैं वे देव जो विश्वत्रित का निस्तार करेंगे ? विश्वत्रित का उद्धार वे अत्रि देव करेंगे जो स्वयं कुविचार, कदाचार और कदाहार से मुक्त, तथा सुविचार, सदाचार और शुद्धाहार से युक्त हैं । पृथिवी पर यत्र तत्र निवास करनेवाले जितने नर-नारी कुविचार, कदाचार और कदाहार से मुक्त हैं वे सब अत्रि [अ-त्रि] देव हैं । असंख्य अत्रि देव पृथिवी पर जहां तहां बिखरे पड़े हैं । सुसंगठित होकर उन्हें विश्वत्रित को अत्रि [अ-त्रित] बनाना है ।

संसार में जितने दुरित हैं, जितनी बुराइयां हैं वे सब कु-विचार, कदाचार और कदाहार रूप त्रित की ही सन्ततियां हैं । इस त्रित ने संसार में इतनी बुराइयां उत्पन्न करदी हैं कि उनकी गणना कर सकना सर्वथा असम्भव है । परिणामस्वरूप, संसार का इतना बिगाड़ होगया है कि उसके सुधार के लिए सुधारक अत्रि देवों की एक सक्षम सेना तयार करनी होगी । वर्तमान में हमारी इस पृथिवी की जनसंख्या साढ़े तीन अरब है जिसमें से अनुमानतः पिच्यानवें [६५] प्रतिशत लोग त्रित हैं । प्रत्यक्षतः, विश्वत्रित को अत्रि बनाने अथवा त्रितों को अ-त्रितों में परिणत करने की साध बहुत दुःसाध्य है ।

बिगाड़ बहुत अधिक हो चुका है और होता जा रहा है ।

कठिनाई यह है कि त्रितसमूह बुराईयों को बुरा नहीं समझ रहा है, उन्हें आपत्तिरहित और अनिवार्य समझ रहा है। हर बुराई एक सामाजिक आवश्यकता मानी जा रही है, या वह फ़ैशन वा रिवाज बन गयी है। त्रिदोष त्रितों की प्रकृति बन चुका है। त्रितों को कूप में से निकालने के लिए उनकी प्रकृति को बदलना होगा। त्रितों को कूप में से निकालना एक असाधारण साध है। वे कूप में पड़े पड़े कराह रहे हैं, और निकाले जाने पर निकलने से इंकार करते हैं।

न्यू केसिल यूनीवर्सिटी में बेदोपदेश करते हुए जब मैंने कौमार्य की भद्रताओं [virtues of virginity] तथा शुद्ध खान-पान पर प्रकाश डाला तो उपदेश के पश्चात् एक अंगरेज प्रोफ़ेसर ने मुझसे कहा, 'भारत से आए योगियों और धर्मप्रचारकों में से आप पहिले व्यक्ति हैं जिसने कौमार्य और खान-पान जैसे विषयों को इस [इंग्लैण्ड] देश में छेड़ा है। आपके इस नैतिक बल और साहस के लिए मैं आपको बधाई देता हूं। जो भी योगी और प्रचारक यहां आता है वह यहां ऐसी ही बातें कहता है जो यहां के लोगों की मनोवृत्ति के अनुकूल होती हैं। जैसा कि आपने कहा, मैं मानता हूं कि जो लड़की कौमार्ययुक्त नहीं है, और जो पत्नी स्वपतितुष्ट नहीं है उसे वेश्या के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं कहा जा सकता है। पर पाश्चात्य देशों में तो विवाहपूर्व कोर्टशिप, जो व्यभिचार का एक सभ्य नाम है, सामाजिक नियम बन चुका है। तदतिरिक्त, लड़के-लड़कियों का खुला यौनाचार भी आमोद-प्रमोद का एक सामान्य व्यवहार होगया है। आपका यह कहना भी सही है कि प्रकृति ने पीने के लिए पानी, और खाने के लिए अन्न-फल-शाक बनाया है। पर यहां तो पानी की जगह सुरा का पान करते हैं, और मांस भोजन में पौष्टिक आहार माना जाता है। वाञ्छनीय होने पर भी

आपकी बातों का अनुकरण लगभग असम्भव ही प्रतीत होता है। किसिंग [चुम्बन], हैण्ड शेक [हाथ मिलाना] तथा धूम्र-पान के विरुद्ध आपने जो तर्क दिए हैं वे, निस्सन्देह, वज्रनदार हैं। पर ये बातें हमारे जीवनो में ऐसी रम गई हैं कि उनसे छुटकारा अविश्वसनीय है।'

धन के लिए दुराचार तो सभी देशों में आम है। पाश्चात्य देशों में तथा अफ्रीका में ऐसी लड़कियों की संख्या बड़ी तेजी के साथ बढ़ती चली जा रही है जो खुल्लमखुल्ला, बेबाकी के साथ कहती हैं कि यौनाचार तथा सन्तान की प्राप्ति के लिए विवाह के बन्धन में बंधकर हम पति की गुलामी में क्यों रहें। बिना विवाह यौनसुख कहीं अधिक अच्छी तरह भोगा जा सकता है, और किसी के भी संग से सन्तान पैदा की जा सकती है।' सभी यूरोपीय देशों में, अमेरिका में और अफ्रीका में ऐसे असंख्य परिवार हैं जिनमें अविवाहित लड़कियां माता बन जाती हैं, और समाज में उनकी किसी प्रकार की अप्रतिष्ठा नहीं होती है। हमारी दृष्टि में यह जंगलीपन है, और उनकी दृष्टि में यह प्रगतिशीलता है। अमीर तबकों में और अभावग्रस्त वर्गों में मानवीय चरित्र का जो ह्रास हो रहा है वह बहुत बीमत्स है। भारत का भी बड़ी तेजी से पश्चिमीकरण हो रहा है।

इतना मात्र मैंने इसलिए लिखा है कि अत्रि देव यह अनुमान लगा सकें कि रोग किस सीमा तक बढ़ चुका है, कितनी तेजी से वह बराबर बढ़ता जा रहा है और कि वे यह भी समझ सकें कि त्रितों के उद्धार के लिए उन्हें कितनी दूर जाना है।

पड़ा हुआ है त्रित कुएं में,
त्राणार्थ पुकारता देवों को।

३ सफलता का रहस्य

असद् भूम्याः समभवत् तद् द्यामेति महद् व्यचः ॥

अथर्ववेद ४.१६.६

(अ-सत्) असत् (भूम्याः) भूमि से (सम् अभवत्) उत्पन्न हुआ । (तत्) वह (मंहत् व्यचः) महाविस्तारवाला होकर, बढ़ते बढ़ते (द्याम् एति) द्यौ को पहुँच रहा है ।

पृथिवी बन गई । नेकी का फ़रिश्ता [देव] आया, और उसने नेकी का बीज बो दिया । उसी क्षण बदी का फ़रिश्ता [स्तेन, Satan, शैतान] आया, और उसने बदी का बीज बो दिया । तीसरे प्रातः दोनों बीजों से अंकुर निकले । देव ने प्रसन्न होकर कहा, 'नेकी का अंकुर ही विश्वव्यापी वृक्ष बनेगा,' और वह चला गया । फिर उसने न कभी लौटकर उस नेकी के अंकुर को देखा, न उसे सींचा, न उसे सम्भाला । स्तेन ने बदी के अंकुर को नित्य देखा-भाला, सींचा, सम्भाला । देव ने देखा कि बदी का वृक्ष सारी पृथिवी पर फैल गया लेकिन नेकी के वृक्ष की एक शाखा भी किसी ओर दिखाई न दी । देव वहाँ गया जहाँ उसने उस दिन नेकी के अंकुर को देखा था । नेकी का अंकुर एक ऐसा छोटा-सा वृक्ष बनकर रह गया था कि उसकी छाया में कुछ प्राणी ही आश्रय पा सकते थे, और उसकी डालियों पर कुछ पक्षी ही अपने घोंसले बना सकते थे । देव उदास होगया । स्तेन ने अट्टहास करते हुए कहा, 'देव ! तूने एक मूल की भूल की । तूने समझा कि नेकी का अंकुर अपने आप विश्वव्यापी वृक्ष बन जाएगा और बदी का अंकुर, निश्चय ही, सूख जाएगा । अपने आप न नेकी का अंकुर व्यापता है न बदी का । जो जिस अंकुर को जितनी तत्परता के साथ सींचता है वह उतना ही

विशाल वृक्ष बनता है ।'

इस आख्यान में एक शाश्वत नियम निहित है । न जाने हम कबसे 'सत्यमेव जयते, नानृतम्' 'सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं' की रट लगाते चले आरहे हैं । न जाने कब से हम यह रट भी लगाते चले आरहे हैं कि 'धर्म एव जयति, नाधर्मः.' 'धर्म ही जीतता है, अधर्म नहीं ।' लेकिन शताब्दियों से नहीं, सहस्राब्दियों से हम देख यह रहे हैं कि असत्य तथा अधर्म, दोनों की ही विश्वव्यापी विजयसम्पादन होती चली जा रही है, और सत्य तथा धर्म की पग पग पर पराजय होती आ रही है । बदी के फ़रिश्ते को तो पता है, पर नेकी के फ़रिश्ते को पता नहीं है कि जय न सत्य की होती है न असत्य की, विजय न धर्म की होती है न अधर्म की । जय और विजय तो पुरुषार्थ की होती है । असत्य और अधर्म के प्रचारकों ने भरपूर पुरुषार्थ किया, और उन्होंने असत्य और अधर्म को सारे संसार में व्याप दिया । सत्य और धर्म के प्रचारक नारेबाज़ और लच्छेदार, बातूनी पेशेवर बनकर रह गए, और सत्य और धर्म ग्रन्थों, यज्ञशालाओं, धर्मालयों और भोजनालयों में सिकुड़कर रह गया ।

सिक्के का दूसरा पहलू है कथनी और करनी का । ज्ञानियों ने कहा था, 'सत्यं वद, सत्यं बोल' और 'धर्मं चर, धर्म को आचरण में ला ।' नेकी के फ़रिश्ते यह भूल गए कि बोलने की वस्तु सत्य है, धर्म नहीं । सत्य बोला जाना चाहिए, और धर्म आचरण में आना चाहिए । उन्होंने धर्म को कथन की वस्तु बना लिया, और सत्य को बनाया अवसरवादिता का साधन । परिणामस्वरूप, वे नेकी को व्याप न पाए । बदी के फ़रिश्तों ने असत्य को वाणी का ही विषय बनाया, और अधर्म को आचरण का । परिणामस्वरूप, उन्होंने बदी को संसार में व्यापने में सफलता प्राप्त की ।

सत्य और धर्म के संयोग का नाम है नेकी, और असत्य और अधर्म के संयोग का नाम है बदी। शुभ हो वा अशुभ, स्वयमेव किसी की भी विजय नहीं होती है। जिसके पक्ष में पुरुषार्थ होता है, विजय उसी की होती है। अभीष्ट नेकी ही है, बदी नहीं। सुख, शान्ति, स्वस्ति और आनन्द की प्राप्ति संसार में नेकी की व्याप्ति से ही होगी। पर नेकी की व्याप्ति संसार में होगी तभी जब नेकी के प्रचारक बदी के प्रचारकों से कहीं अधिक पुरुषार्थी होंगे।

उपर्युक्त मन्त्रांश में 'असत्' शब्द का प्रयोग असत्य और बुराई, दोनों अर्थों में हुआ है। असत् पृथिवी से उठकर द्युलोक को छूरहा है। सत् [सत्य और नेकी] का दर्शन तक दुर्लभ है। मेरी परिभाषा में नेकी का ही नाम धर्म, और बुराई का ही नाम अधर्म है। जो कुछ सु है वह सब धर्म है। जो कुछ कु है वह सब अधर्म है। जो कुछ भद्र है वह सब धर्म है। जो कुछ अभद्र है वह सब अधर्म है।

बदी के प्रचारक असंख्य, अपार हैं, और संगठित हैं। नेकी के प्रचारक हैं, पर बहुत थोड़े, और वे भी बिखरे हुए और विगठित। इस दुरावारा स्थिति में देवों [नेकी के प्रचारकों] को साधनाक्षेत्र में उतरना है, और बदी का निराकरण करके नेकी को व्यापना है। कार्य कठिन है, किन्तु करणीय है और किया जाना चाहिए।

असत् हुआ अंकुरित भूमि से
और वह व्याप गया जगती में।

असत् उठा भूमि से और वह
चढ़कर पहुँच गया द्युलोक तक।

४ सुगन्धीकरण

नू मर्तो दयते सनिष्यन् यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ॥

ऋग्वेद ७.१००.१

अन्तरिक्ष [वातावरण] में दूषण [दुर्गन्ध] बहुत बढ़ गया है, और वैज्ञानिकों को चिन्ता सता रही है कि उससे मानवों के स्वास्थ्य और जीवन की रक्षा किस प्रकार की जाए। किन्तु स्वयं मानवों के जीवनो में जो दूषण और गन्ध बढ़ रहा है वह अन्तरिक्ष के दूषण से कहीं अधिक घातक है। वैज्ञानिक धन्यवादाह है कि वह अन्तरिक्ष के दूषण को मिटाना चाहता है। किन्तु उससे अधिक वह साधक धन्यवादाह होगा जो मानवों के बाह्य करणों तथा अन्तःकरणों के दूषणों को नष्ट करके उनके जीवनो को सुगन्धित बनाएगा। वेदमाता कहती है—

१) वह (मर्तः) मानव, सुमानव (एतावन्तम् नर्यम्) इतने नर्य को, सम्पूर्ण मानवसमाज को (नु) शीघ्र, सद्यः (आ-विवासात्) पूर्णतया सुगन्धित करे (यः) जो (सनिष्यन्) देने/त्याग करने की इच्छा करता हुआ (दयते) दया करता है।

दया ही त्याग, सेवा, सुधार और सुगन्धीकरण की प्रेरिका है। त्याग के बिना दया का कोई अर्थ नहीं। ओष्ठ-सहानुभूति का नाम दया नहीं है। दया पीड़ितों के प्रति हृदय की तड़प का नाम है। 'सृष्टिनायक, अशरफ़ुल मखलूक़ात, लॉर्ड ऑफ़ क्रिएशन, स्रष्टा से दूसरे दर्जे पर कहलानेवाला यह इंसान, आह, विचार से, भावना से, आचार से, आहार से, व्यवहार से, सब प्रकार से मलिन, दुर्गन्धित होगया,' ऐसी मर्मस्पर्शी दया जब सुधारक के मानस में उमड़ती है तभी वह स्व सर्वस्व स्वाहा

करके मानवों के सुगन्धीकरण के लिए कमर कसता है। मानवों के आचार, विचार, आहार, व्यवहार और भावनाओं को शुद्ध, पवित्र कर देना ही उनको सुगन्धित करना है। सच्चा सुधार इसी का नाम है।

प्रेम, प्रेरणा, सेवा और उपदेश ही सुधार के अमोघ साधन हैं। धृणा, भर्त्सना, कटाक्ष और रोष से नहीं, स्नेह, सौहार्द और सहानुभूति से ही संसार का सुधार होगा।

२) वह मानव ही मानवों का सुधार करके उनका सुगन्धीकरण कर सकेगा (यः) जो (उरु-गायाय विष्णवे) बहु-स्तुत विष्णु के प्रति (दाशत्) समर्पित होवे।

सदा से ही सुधार की साध दुस्तर और दुस्साध्य रही है। सुधार के प्रत्येक साधक को आरम्भ में नितान्त एकले ही चलना पड़ा है। और वह जिनके सुधार के लिए तत्पर हुआ, स्वयं उन्होंने ही उसे मिटाने का सर-अंजाम किया। 'सुधारक ! सुधार के पथ पर सोच-समझकर पग रखना। सुधार की राह पर प्रथम वे तेरा उपहास करेंगे। फिर भी तू आगे बढ़ा तो वे तुझे लाञ्छित करेंगे। इस पर भी तू न रुका तो वे तेरा अपमान करेंगे। अपमानित होने पर भी यदि तू समुत्कान अपने कदम बढ़ाएगा तो वे तेरा विरोध करेंगे। विरोध को भी पार कर गया तो वे तेरी जान के ग्राहक बनेंगे। फिर भी तू न रुका तो वे सनमस्कार अपनी सेवाएँ अर्पित करेंगे,' सुधारक के प्रति 'विदेह' की यह उक्ति निश्चय ही अक्षरशः सही है। ऐसा भी समय आ सकता है जब इस पथ पर चलते हुए, स्वयं साधक की अपनी छाया भी उसका साथ छोड़ दे।

सुधार की साधना में निरत मानव को उरुगाय विष्णु के प्रति समर्पित होकर ही इस राह का राही बनना चाहिए। सर्वव्यापक प्रभु का स्तुतिगान करते हुए ही आगे बढ़ना श्रेय-

स्कर है। उरुगाय विष्णु की ज्योति और शक्ति प्राप्त करते हुए ही विश्व के सुगन्धीकरण के लिए सन्नद्ध होना योग्य है।

३) अरबों मानवों का सुगन्धीकरण बहुत लम्बी साधना की अपेक्षा रखता है। अतः इसमें वही मानव सफलकाम होता है (यः) जो (सत्राचा मनसा) सत्यनिष्ठ मन से (प्र यजाते) प्रयजन करता है, अनवरत साधना करता है।

सत्य निष्ठा के साथ विविध, सुगन्धित पदार्थों से जो द्रव्य-साध्य यज्ञ किया जाता है वह यजन है, सामान्य यज्ञ है। अपनी सुगन्धित जीवनहवि से विश्वसुधार का जो सुपावन यज्ञ किया जाता है उसकी संज्ञा 'प्रयजन' है, प्रकृष्ट यज्ञ है, परमोत्कृष्ट यज्ञ है। यह प्रयज्ञ जहां गहन निष्ठा और अडिग आत्म-विश्वास के साथ किया जाता है वहां दीर्घ, सुदीर्घ काल तक सतत, सन्तत, निरन्तर, बिना व्यवधान किया जाता है।

मानवसमाज के दूषण को विनष्ट करके, जन जन के जीवन को सुगन्धित करने के लिए असंख्य दयार्द्र देव-देवियां त्याग-भाव से प्रसाधना तथा प्रचार के क्षेत्र में उतरे, और प्रभु को समर्पित होकर सत्यनिष्ठ मन से प्रयजन करें। पृथिवी के सभी देश-प्रदेशों में मानव के बाहर-भीतर दूषण बढ़ रहे हैं। सुधारक स्थिति असाध्य होने से पूर्व ही सफल चिकित्सा करें। लगभग चार अरब मानवप्रजा का सुगन्धीकरण कोई सरल साध नहीं है, विकट समस्या है।

वह मानव इतने मानव को
पूर्णतया करे सुगन्धित,
जो करता है दया,
त्याग की करता हुमा इच्छा;
जो बहुस्तुत विष्णु के प्रति
होवे समर्पित;
सत्यनिष्ठ मन से जो करता है प्रयजन।

५ सुधार की राह पर

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥

ऋग्वेद ७.३२.२६, सामवेद २५६; १४५६, अथर्ववेद १८.३.६७;

२०.७६.१

१) (इन्द्र) प्रभो ! (नः क्रतुम् आ भर) हमें कर्तृत्व प्राप्त करा, (पिता पुत्रेभ्यः यथा) पिता पुत्रों के लिए जैसे ।

२) (पुरु-हूत) बहु-आहूत ! बहुत पुकारे जानेवाले ! (अस्मिन् यामनि) इस मार्ग में, इस राह पर (नः शिक्ष) हमें शिक्षा कर, हमें उपाय सुझा, हमारा मार्गदर्शन कर ।

३) हम सब (जीवाः) मानव (ज्योतिः अशीमहि) ज्योति सेवन करें । विश्व की सम्पूर्ण मानवजाति के सुधार की साध जहां सर्वातिशय श्रेष्ठ साध है वहां वह सर्वातिशय कठिन साध भी है । इसकी सिद्धि के लिए जिस क्रतु, जिस कर्तृत्व, जिस कर्मक्षमता और कर्मकुशलता की आवश्यकता है उसकी प्राप्ति हमें परम पिता परमात्मा से ही हो सकती है । यों तो सभी मानव परमात्मा के पुत्र हैं पर उसके सच्चे पुत्र-पुत्रियां वे ही हैं जो समग्र मानवप्रजा को उसकी राह पर चलाने और सम्पूर्ण मानवसमाज को सुधारने का सतत प्रयास करते हैं । परमात्मा सर्वशक्तिमान् है । उसकी सर्व शक्तियों से सशक्त होकर ही हम इस सुपावन साध की सफल साधना कर सकेंगे । उसकी शक्तियों का संचार विश्वसुधारकों के जीवनो में तभी होगा जब वे सर्वात्मना उससे संयुक्त रहेंगे । जिस प्रकार बिजली से चालित यन्त्र बिजलीयुक्त होकर ही गति करते हैं उसी प्रकार सुधारक अहंकाररहित और अभिमानरिक्त होकर जब आत्मना ब्रह्म से युक्त रहते हुए कार्य करेंगे

तो, निस्सन्देह, वे वट वृक्ष की तरह फैलेंगे, और विश्व को अपनी शीतल, शान्त छाया में आश्रय देकर वाञ्छित सुधार करेंगे।

परमात्मा पुरुहूत है। विश्वसुधार की राह में जब, जहां जो बाधा उपस्थित हो, सच्चे पुत्र-पुत्रियों की तरह हम उसे पुकारें तो हो नहीं सकता कि वह अन्तर्यामी हमें कठिनाई पार करने की विधि न सुझाए। सुधार की जिस राह पर हम कदम रख रहे हैं वह लम्बी है, इतनी लम्बी कि उसका ओर दिखाई दे रहा है पर छोर दिखाई नहीं दे रहा है। वह इतनी घुमरीली और भूलभुलैयां-भरी भी है कि पग पग पर हमें सही शिक्षण की आवश्यकता होगी। सुधार की राह पर चलते हुए हम जब, जहां अपने आपको निरुपाय पारहे होंगे तब, वहां हम उस पुरुहूत को पुकारेंगे, 'शिक्षा एो अस्मिन् पुरुहूत यामनि; शिक्षा कर, उपाय सुभा हमें इस राह पर, हे पुरुहूत !' और उपाय मिलेगा, अवश्य मिलेगा।

विश्वसुधार का मार्ग पुष्पाकीर्ण नहीं है, कण्टकाकीर्ण है। सुधारक जिनका सुधार करने निकले हैं उन्होंने ही उनका विरोध किया है। विश्वसुधारकों को स्वयं विश्व ने सूली पर चढ़ाया है। जहर पिलाकर सदा के लिए सुलाया है, पत्थरों से पथराया है, आग में झोंका है। पर आज का संसार प्रचेतना-युक्त और सहनशील भी है, सुनने और समझने के मूड में भी है। वर्तमान युग में विश्वसुधारकों को न सूली पर चढ़ाया जाएगा, न जहर पिलाया जाएगा न आग में झोंका जाएगा। पृथिवी का सारा मानवसमाज आज सुधार के लिए छटपटा रहा है। देखो, वे प्रभु से प्रार्थना कर रहे हैं, 'कुविचार और कदाचार के अन्धकार में ठोकरें खा रहे हम सब (जीवाः) मानव (ज्योतिः अशी-महि) ज्योति सेवन करें।'।

मैं विश्व की नब्ज टटोल रहा हूं। मुझे विश्व के मानवों

की चीत्कार सुनाई देरही है। उमड़ते हुए धन के साथ उभरते हुए विलास ने पाश्चात्य तथा पौरस्त्य, सभी देशों के नागरिक-नागरिकाओं को प्रेय की उस धधकती हुई भट्टी में भोंक दिया है जिसमें जलते और फुलसते हुए भी, वे मज्जे-मज्जे में क़ज़ा के मुंह में जारहे हैं, ज़हर को अमृत समझकर वे ग़टाग़ट पिए चले जारहे हैं। उधर, जितने धर्म-सम्प्रदाय हैं वे सब लेबिलबाज़ियों, नारेबाज़ियों और लनतरानियों में मस्त हैं। राजनैतिक पार्टियों से विश्वसुधार की दिशा में लेशमात्र कोई आशा की ही नहीं जा सकती।

मैं सोचता हूँ, एक सार्वभौम विश्वसुधार संघ (वर्ल्ड रिफ़ॉर्मेशन ऑर्गनाइज़ेशन) की स्थापना की जाए, जिसकी सदस्यता किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, पार्टी, वर्ग, देश के ऐसे सभी नर-नारियों के लिए खुली हो जो स्वयं सुधार कर, अपने इर्द-गिर्द सभी के सुधार की इच्छा रखते हों। व्यक्ति-व्यक्ति, परिवार-परिवार, समाज-समाज और राष्ट्र-राष्ट्र का सुधार करके ही विश्वसुधार सम्पन्न होगा। प्रस्तावित संघ के गृहस्थमुक्त तथा विरक्त सदस्य-सदस्या अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर रहे होंगे, और गृहस्थ जन अपने अपने क्षेत्र में सुधाररत रहेंगे। विश्व-सुधारका आरम्भ आत्मसुधार से होगा, उसकी व्याप्ति विश्व में होगी पर उसका अन्त कभी नहीं होगा। सुधार की धारा तब तक निरन्तर जारी रहेगी जब तक इस पृथिवी पर मानव का अस्तित्व रहेगा।

जिस प्रकार सारे शरीर के स्वस्थ होने पर ही प्रत्येक अङ्ग स्वस्थ रहता है उसी प्रकार सारे विश्व का सुधार होने पर ही प्रत्येक राष्ट्र शुद्ध और स्वस्थ रह पाएगा। सारी पृथिवी एक इकाई है। सब देश आज एक दूसरे के आंगन [सहन] बने हुए हैं। हर देश की बुराई हर देश में आनन-फ़ानन में फैल जाती

है । अतः सुधार की ध्वनि और सुधार का सन्देश सभी देशों में एक साथ गुंजाना होगा, यद्यपि सुधार की साधना क्षेत्र क्षेत्र में पृथक् पृथक् होरही होगी । मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि विश्वसुधार के लिए हमें विश्व की सम्पूर्ण मानवप्रजा को एक अभिन्न परिवार में परिणत करना होगा । ऐसा होने पर ही संसार युद्धों की सबसे बुरी बुराई से भी मुक्त होगा । विश्व-सुधार से ही विश्व का आर्यकरण होगा ।

जो भी उदाराशय देव-देवियां मेरे इस समारम्भ को वाञ्छनीय समझते हैं वे अपने अपने सुभाव और अपने अपने नाम और पते आत्मनिष्ठा के साथ मुझे लिखें ।

प्राप्त करा कर्तृत्व हमें, प्रभो !

पिता पुत्र-पुत्रियों को जैसे ।

शिक्षा कर, पुरुहूत ! हमें इस पथ पर ।

मानव हम सेवें ज्योति को ।

६ सार्वभौम साधना

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते
पुरुषेभ्यः । विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव
दृशेम सूर्यम् ॥

अथर्ववेद १.३१.४

१) (नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु) हमारे माता और पिता के लिए सु-अस्ति हो ।

२) (गोभ्यः) दिशा-विदिशाओं के लिए, दिशा-विदिशाओं में स्थित राष्ट्रों के लिए, (जगते) जगत् के लिए, सारी पृथिवी के लिए, (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिए (स्वस्ति अस्तु) सु-अस्ति हो ।

३) (नः विश्वम्) हमारा विश्व [संसार] (सु-भूतम्) सु-सम्पन्न, सु-

ऐश्वर्यशाली [और] (सु-विवर्तम्) सु-ज्ञानसम्पन्न, सुमतियुक्त (अस्तु) हो ।
 ४) हम (ज्योक् एव) चिर काल ही, दीर्घ काल तक (सूर्यम् दृशेम) सूर्य को देखें, सूर्य का दर्शन करें ।

इस मन्त्र में विश्वसुधार का सूक्ष्म बीज, और, साथ ही, विश्वकल्याण का एक विशाल वृक्ष आरोपित है । जिस प्रकार नन्हे-से बट-बीज से एक सुविशाल वृक्ष का प्रादुर्भाव होता है उसी प्रकार इस एक मन्त्र में विश्वसुधार की समस्या का एक पूर्ण समाधान सन्निहित है ।

सारी पृथिवी एक अभिन्न विश्व-परिवार है । विशेषतः वर्तमान युग में तो पृथिवीस्थ सारा विश्व एक दूसरे देश और राष्ट्र का घर-आंगन बना हुआ है । प्रत्येक देश के व्यक्ति प्रत्येक देश में जाते हैं । इस अन्तरराष्ट्रीय आवागमन से, जहां देश देश का ज्ञान-विज्ञान देश देश में प्रवेश करता है वहां राष्ट्र राष्ट्र की बुराइयां भी राष्ट्र राष्ट्र में प्रवेश करती हैं । राष्ट्र राष्ट्र की अच्छाइयां नहीं, केवल बुराइयां ही राष्ट्र राष्ट्र में व्याप रही हैं । अमेरिका में हिप्पीवाद प्रचलित हुआ । देश-देशान्तरों की यात्रा करनेवाले हिप्पियों से विविध राष्ट्रों में हिप्पीवाद व्याप रहा है । भारतीय कॉलेजों के अधिकांश विद्यार्थियों की केशसज्जा हिप्पियों की जैसी दिखाई दे रही है । भारत में मदिरापान और नाच-क्लबों पाश्चात्य देशों के अनुकरण से प्राप्त अभिशाप हैं । अन्तरराष्ट्रीय छूत ने पृथिवी पर के सभी देशों को विलासी बना दिया है । कामाचार की घिनौनी मान्यताओं तथा खुली काम-क्रीडाओं का सार्वभौम विस्तार अन्तरराष्ट्रीय सम्पर्कों का ही परिणाम है । व्यसन, विलास और कामाचार का अनुकरण आज देश-देशान्तरों में जिस तेजी से बढ़ रहा है उसने सारे विश्व को ही भयंकर अभिशाप से अभिशप्त कर दिया है । दुरितों की अन्तरराष्ट्रीय छूतों से कोई देश बचना भी चाहे तो वह कहां

तक और कब तक बचा रह सकता है ? अतः एक ओर जहाँ हमें अपने अपने देश और राष्ट्र में सुधार के क्रम को क्रमित करना है, जहाँ हमें एक देश की बुराइयों को दूसरे देश में फैलने से रोकने के उपाय करने हैं वहाँ सार्वभौम सुधार के प्रवाह को भी प्रवाहित करना है ।

(विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु) हमारा विश्व सुसम्पन्न और सुमतियुक्त हो, मन्त्र की इस सुपावन और गहन सूक्ति से यही ध्वनि ध्वनित होरही है । काम तभी बनेगा और वास्तविक विश्वसुधार तभी होगा जब हमारा पृथिवीस्थ यह सारा संसार सुसम्पन्नता के साथ साथ सुमति से भी युक्त होगा, और जब संसार भौतिक ऐश्वर्यशालिता के साथ सुमतिजन्य सुविचारों से भी समलंकृत होगा । प्रथम आवश्यकता सार्वभौम वैचारिक संशोधन की है । विश्व का मानव जब तक सुमतिमान् न होगा तब तक भौतिक सम्पदा वडवानल बनकर विश्व को जलाती ही चली जाएगी । विश्व में दौलत के सम्पादन और संवर्धन की होड़ तो सर्वत्र लग रही है किन्तु मानवों के विकृत मस्तिष्कों को शोधकर उनमें सुमति की स्थापना की ओर न किसी का ध्यान है, न कोई व्यवस्था की जा रही है । यह निश्चित है कि सब बिगाड़ों का भी और सब सुधारों का भी, सब बुराइयों का भी और सब भलाईयों का भी मूल मानव का मस्तिष्क है । सच्चाई यह है कि आज राष्ट्रों के नेताओं और धर्म के प्रचारकों तक के मस्तिष्क विकारग्रस्त हैं और, परिणामस्वरूप, उनकी सभी गतिविधियां और चेष्टाएं दुरितों और विकारों से लथपथ सनी रहती हैं । यही कैफ़ियत अध्यापकवर्ग और विद्यार्थिवर्ग की है; अध्यापक विश्व के निर्माता हैं और विद्यार्थी विश्व के भविष्य हैं । ऐसी अवस्था में विश्वशांति और विश्वनिर्माण के भव्य स्वप्न कैसे सिद्ध होंगे ? इस युग का नाम बुद्धिवादो युग है ।

शिक्षित वर्ग को बुद्धिवादी वर्ग कहा जाता है । किन्तु देखने में यह आरहा है कि बुद्धिवादी वर्ग के मस्तिष्क ही दुरितों [बुराइयों] के नित्य नए नए आविष्कार कर रहे हैं ।

हमें विश्व का सुनिर्माण करना है, ऐसे विश्व का जिसमें सब सुसम्पन्न और सुमतियुक्त हों । ऐसे विश्व के सुनिर्माण के लिए (नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु) हमारे माता और पिता के लिए स्वस्ति हो ।

‘स्वस्ति’ नाम सु-अस्ति, सु-अस्तित्व, सुजीवन का है । ‘अस्ति’ शब्द ही लोकभाषा में ‘हस्ती’ शब्द बन गया है, जिसका अर्थ है ज़िन्दगी, जीवन । ‘सु-अस्ति’ का अर्थ है सुजीवन, श्रेष्ठ जीवन, अच्छी पाक ज़िन्दगी ।

वेदमाता यहां विश्व के सुनिर्माण का एक शोभन चित्र प्रस्तुत कर रही है । विश्व का सुनिर्माण न योगी और संन्यासी करेंगे, न अध्यापक और उपदेशक; न नायक और गायक करेंगे, न ज्ञानी और ध्यानी; न वेदज्ञ और शास्त्रज्ञ करेंगे, न शासक और साधक । वे सब तो केवल मार्गदर्शन करेंगे और पथप्रदर्शन करेंगे । विश्व का सुनिर्माण तो केवल माता और पिता करेंगे, वे माता और पिता जिनका जीवन सुजीवन होगा, जिनकी ज़िन्दगी ज़िन्दा और पाक ज़िन्दगी होगी, जिनका अस्तित्व सु-अस्तित्व होगा, जिनकी हस्ती सु-हस्ती होगी । विश्व के सुनिर्माण के लिए आदर्श माता और पिता चाहिए, स्वच्छ और स्वस्थ जननी और जनक चाहिए । जिस प्रकार भव्य भवन बनाने के लिए भव्य कारीगर चाहिए उसी प्रकार विश्व के सुशोभन निर्माण के लिए सुपावन और सुशोभन माता पिता चाहिए ।

हर तरफ़ से विश्व के निर्माण की आवाज़ें आरही हैं । हर वह व्यक्ति जिसे बोलना और लिखना आता है विश्वनिर्माण का राग अलाप रहा है, विश्व के सुनिर्माण की ध्वनि गुंजा रहा

है। पर किसी को यह पता नहीं है कि विश्व का सुनिर्माण है क्या वस्तु, और कौन है उसका निर्माता।

विश्व के सुनिर्माण का अर्थ है हमारे इस पृथिवीरूप विश्व में निवास करनेवाले मानवों के जीवनो का सुनिर्माण। पृथिवी पर जो और जितना भौतिक अथवा पार्थिव निर्माण हो रहा है वह सब तो पृथिवी का निर्माण है। विश्व के मानवों के जीवनो का सुनिर्माण ही विश्व का सुनिर्माण होगा। इसी तथ्य का संज्ञान कराने के लिए वेदमाता ने कहा है, '(स्वस्ति अस्तु) सुजीवन हो (जगते) जगत् के लिए, जगत् के (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिए। इस पृथिवीरूप जगत् में जितने पुरुष हैं उन सबका जीवन सुजीवन हो, यही विश्व का सुनिर्माण है। इसी लिए कहा गया था, '(विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु) हमारा विश्व सुसम्पन्न और सुमतियुक्त हो।' विश्व के मानव केवल सुसम्पन्न ही न हों, सुमतियुक्त भी हों।

कौन करेगा विश्व का सुनिर्माण? सु-अस्ति से युक्त माता-पिता ही करेंगे विश्व का सुनिर्माण। माता-पिता ही हैं विश्व के जन्मदाता, और वे ही हो सकते हैं विश्व के जीवननिर्माता। कहां होगा विश्व का सुनिर्माण? सुजीवन से युक्त जननी के गर्भ में, माता-पिता की गोद में, माता-पिता के घर-आंगन में। कहां जन्मते हैं विश्व के मानव? गृहों में। कहां रहते हैं विश्व के मानव? गृहों में। तो विश्व का सुनिर्माण अथवा विश्व के मानवों के जीवनो का सुनिर्माण भी होगा आदर्श माता-पिताओं के सुगृहों में। जीवन न विद्यालयों में बनते हैं, न न्यायालयों में। जीवन तो केवल पित्रालयों में बनते हैं, जहां सुजननियां मानवसन्ततियों में सुसंस्कारों का समंकन करके उन्हें सुसंस्कृत देव और देवियां बनाती हैं, और जहां सुजीवन से युक्त पिता उन्हें मानवीय शील और मानवीय सद्गुणों से समलंकृत

करता है। माता से बढ़कर मानवसन्तति का अन्य कोई सुनिर्माता नहीं है और पिता से बढ़कर मानवसन्तान का अन्य कोई सुरूपकृत्तु नहीं है।

विश्व के सुनिर्माण के लिए, सर्वप्रथम, माताओं और पिताओं का निर्माण करना होगा, या कहिए स्वयं माता-पिताओं को अपना सुनिर्माण करना होगा। स्वयं अपना निर्माण करके ही वे विश्व की मानवसन्तति का सुनिर्माण कर सकेंगे। विश्व के सुनिर्माण के लिए चाहिए निर्व्यसन, निर्विलास, सदाचारी, जितेन्द्रिय, परम आस्तिक, धर्मप्राण, तपस्वी, शीलवान् और शालीन सुमाता और सुपिता। सुमाता और सुपिता ही बन पाएंगे वे सु-अध्यापिकाएं और सु-अध्यापक, वे ज्ञानदाता और विवेकसंचारक आचार्याएं और आचार्य जो पित्रालयों के छात्र-छात्राओं को विशुद्ध विद्वान् और विदुषी बना सकेंगे।

विश्व के सुनिर्माणार्थ (स्वस्ति अस्तु गोभ्यः) स्वस्ति हो गौओं के लिए। 'गोभ्यः' शब्द के दो अर्थ हैं, गौओं के लिए, राष्ट्रों के लिए। विश्व राष्ट्रों में विभक्त है। विश्व का सुनिर्माण राष्ट्र राष्ट्र करके ही होगा। गौ राष्ट्र के स्वास्थ्य का आधार है। गोदुग्ध न केवल एक पूर्ण पेय है, पूर्ण खुराक भी है। किसी भी राष्ट्र के स्वास्थ्य का गौ से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

मन्त्रान्त में कहा गया है, 'हम (ज्योगेव दृशेम सूर्यम्) चिर काल तक सूर्य का दर्शन करें।' सूर्य के दर्शन से उदीयमानता, प्रकाशमानता और तेजस्विता की प्रेरणा मिलती है। जन जन सूर्य के समान उदयमुख हो, सूर्य के समान प्रकाश का प्रसारक और तेज का संधारक हो। प्रत्येक मानव सूर्य के प्रकाश में काम करे, और रात्रि में विश्राम करे। हर व्यक्ति के लिए राहत की रात, और प्रसन्नता का दिन हो।

स्वस्ति हो हमारे माता-पिता के लिए,

स्वस्ति हो गौओं, राष्ट्रों के लिए,
जगत् के लिए, मानवों के लिए ।
विश्व हो हमारा सुसम्पन्न, सुमतियुक्त ।
चिर काल दर्शन करें हम सूर्य का ।

७ सज्जनतन्त्र

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।

विश्व के बिगाड़ का भी और सुधार का भी मूल स्रोत शासन-सत्ता है । विलासी लम्पटों के हाथों में जब शासन-सत्ता आजाती है तो दिन-प्रतिदिन नहीं, क्षण-प्रतिक्षण संसार का बिगाड़ होरहा होता है । शासन-सत्ता जब संयमी, सदाचारी, तपस्वी, पवित्रजीवी सज्जनों के हाथों में आजाती है तो विश्व के सुधार का मार्ग प्रशस्त होजाता है । विश्व के सुधार में प्रथम वाञ्छनीय पग कोई हो सकता है तो वह है पृथिवीस्थ सभी देशों में सज्जनतन्त्र की स्थापना करना । प्रजातन्त्र तो गुण्डातन्त्र का ही एक मुलम्माकृत [polished] नाम है । व्यसन, विलास, व्यभिचार और चरित्रहीनता प्रजातन्त्र की ही कुदेनें हैं । एकतन्त्र में भी यह सब होता है पर प्रजातन्त्र की अपेक्षा बहुत कम । प्रजातन्त्रप्रणाली में सज्जनतन्त्र की स्थापना सर्वथा असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है जब कि एकतन्त्र में सज्जनतन्त्र की स्थापना अपेक्षाकृत बहुत सरल है ।

प्रजातन्त्र से भी कहीं अधिक अमानवीय हैं शासन की साम्यवाद तथा समाजवाद प्रणालियां । प्रजातन्त्र में कोई भी, भला-बुरा व्यक्ति शासन की गलत नीतियों के विरुद्ध लिख और बोल सकता है । साम्यवाद तथा समाजवाद अपनी

गलतियों की आलोचना का किसी को भी न कोई अधिकार देते हैं, न किसी के द्वारा की गई आलोचना को सहन करते हैं। समाजवाद तो है ही साम्यवाद का एक छद्म रूप।

प्रजातन्त्र बड़ी तेजी के साथ अपने कदम बढ़ाए चला जा रहा है। वह समय बहुत निकट है जब विश्व के रहे-सहे राजा-रानी भी प्रजातन्त्र अथवा समाजवाद की चपेट में आजाएंगे। आज प्रश्न यह नहीं है कि रहे-सहे एकतन्त्र कैसे नष्ट किया जाए क्योंकि वह तो शीघ्र ही सारी पृथिवी पर से गधे के सींग की तरह ऐसे ग्राइव होजानेवाला है कि उसका पुनरावर्तन सदा के लिए सर्वथा असम्भव हो जाएगा। सार्थक प्रश्नों का एक सार्थकतम प्रश्न तो यह है कि प्रजातन्त्र अथवा समाजवाद को सज्जनतन्त्र में किस प्रकार परिणत किया जाए। यह एक निर्विवाद वास्तविकता है कि अनैतिकता और भ्रष्टाचार प्रजातन्त्र में दिन-दूने और रात-चौगुने पनपते हैं। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। जहां जहां प्रजातन्त्र के मनहूस चरण पड़ रहे हैं वहीं वहीं अनैतिकता और भ्रष्टाचार की बेलें फैलती, फूलती, फलती और लहलहाती चली जा रही हैं। ब्रिटेन में कानून-अनुमोदित इगलाम [sodomy] और पार्श्वात्य देशों में खुला व्यभिचार और अनाचार प्रजातन्त्र की ही सौगातें हैं।

प्रजातन्त्र की राजनीति ने सभी क्षेत्रों में प्रविष्ट होकर पवित्र से पवित्र संस्थाओं और संस्थानों को भी गन्दा कर दिया है। धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं तक को उसने ऐसा अपवित्र कर दिया है कि आज वे राजनीतिज्ञों की राजनीति के छल-भरे अखाड़े बने हुए हैं। प्रजातन्त्र की राजनीति ने विश्व में जो सड़ांध फैलाई है उससे सारा संसार ध्वस्त और त्रस्त हो रहा है। प्रजातन्त्र का दूषण अन्तरिक्ष [वातावरण] के दूषण

से भी कहीं अधिक जीवनतत्त्व-विनाशक सिद्ध हो रहा है ।

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः, यह सूक्ति चारों वेदों में असंख्य मन्त्रों के अन्त में दोहराई गई है । (यूयम्) तुम् (स्वस्ति-भिः) स्वस्तियों द्वारा, जनमांगलिक साधनोपायों द्वारा (सदा) निरन्तर (नः पात) हमारी रक्षा करो । 'यूयम्' से तात्पर्य यहां सज्जनों से ही है । शासन की मूर्धा पर सज्जन ही आसीन होने चाहिए, दुर्जन वा असुर नहीं । वेदों में 'देवाः' शब्द का जो प्रयोग हुआ है वह सज्जनों के लिए ही हुआ है । वेदप्रयुक्त 'देवीः' शब्द भी सौजन्यवाचक है । सज्जनता से युक्त नारियों की ही 'देवी' संज्ञा है । 'आर्य' शब्द का प्रयोग भी वेद में सौजन्यपरक है । सज्जनराज्य का ही नाम आर्यराज्य अथवा रामराज्य है । सज्जनराज्य का ही नाम परमात्मा का राज्य है ।

उपर्युक्त सूक्ति में 'नः' [हमारा] शब्द का प्रयोग 'विश्व की हम सब मानवप्रजाओं' अर्थ में हुआ है ।

विश्व में सज्जनतन्त्र की स्थापना के लिए जहां हमें देश देश और राष्ट्र राष्ट्र में सज्जन-संघों की स्थापना करनी होगी वहां हमें सज्जन की परिभाषा भी करनी होगी । विश्व में जितनी भी राजनीतिक पार्टियां हैं उनमें से एक भी पार्टी ऐसी नहीं है जिसे सज्जन-संघ की संज्ञा दी जा सके ।

सज्जनराज्य

सज्जनतन्त्र की स्थापना करने से पूर्व हमें सर्वत्र सज्जनराज्य की स्थापना करनी होगी । सज्जनतन्त्र की स्थापना से, वर्तमान धिनौनी राजनीति का परिष्कार होगा । सज्जनराज्य की स्थापना से सज्जनतन्त्र की स्थापना का पथ प्रशस्त होगा । वास्तव में तो, सज्जनराज्य की स्थापना होने पर ही शुद्ध सज्जनतन्त्र की स्थापना सम्भव होगी । सज्जनतन्त्र का क्षेत्र राजनीति है ।

सज्जनराज्य का क्षेत्र समस्त धार्मिक, सामाजिक और सार्वजनिक संस्थाएं हैं ।

सज्जनों की एकमात्र, किन्तु बहुत बड़ी दुर्बलता यह है कि वे सब एकमत और एकमन होकर संगठित रूप से कार्य नहीं करते हैं । सदा से ही यह शिकायत रही है कि देवों के विगठित रहने के कारण, संगठित असुरों ने जनता पर तथा देवों पर ठाठ के साथ शासन किया है, और देव निरुपाय होकर नपुंसक धार्मिकता तथा लचर आध्यात्मिकता की बेसुरी बंसी बजाते रहे हैं । आज भी स्थिति वही है । असुर सर्वत्र संगठित हैं, और इसी लिए वे सारी पृथिवी की शासन-सत्ता हस्तगत किए हुए हैं । असुर सारी पृथिवी पर आतंक छारहे हैं, और देव केवल ज़माने की शिकायत करके अपना मन बहला रहे हैं । असुर ठाठ के साथ सारी पृथिवी का अनार्यकरण कर रहे हैं, और देव 'कृष्णन्तो विश्वमार्यम्' का तुमुल घोष तो गुंजा रहे हैं पर विश्व का तो क्या, किसी एक गली वा ग्राम का भी आर्यकरण नहीं कर पा रहे हैं ।

समय है कि सभी देशों के सज्जन अपने आपको संगठित करके, सभी संस्थाओं, संस्थानों, समाजों, विभागों, विद्यालयों और व्यवसायों में घुस जाएं और उनमें सज्जनराज्य की स्थापना करें । सज्जनों का सर्वत्र छा जाना ही सज्जनराज्य है । सज्जन छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी स्थितियों पर अपने आपको संस्थित करें, और सर्वत्र ऐसी कुशलता के साथ कार्य करें कि उनके द्वारा जनजीवन सुधरता और निखरता चला जाए, और जनमानस में सज्जनों के सौजन्य का सिक्का जमता चला जाए । मानवसमाज में व्याप जाने पर ही सज्जनों के हाथों में देश, प्रदेश और विश्व की राजनीति आएगी, और सज्जनतन्त्र के लिए वातावरण बनेगा ।

किसी भी ग्राम, नगर, देश, प्रदेश, समाज और सम्प्रदाय में सज्जनों का अभाव नहीं है, भले ही उनकी संख्या अतिन्यून क्यों न हो। मेरा अपना तो ऐसा अनुमान है कि संसार में सर्वत्र सज्जन पर्याप्त संख्या में हैं। सभी जगह सज्जनों की दो कोटियां हैं, नपुंसक और पुंसक। नपुंसक सज्जन उनकी संज्ञा है जो स्वयं अपने आपमें सर्वतः अच्छे, सच्चे और शुद्ध, बुद्ध हैं पर दूसरों को वैसा बनाने का प्रयास नहीं करते हैं। वे सोचते हैं कि 'दुनिया क्या सुधरनी है; वह तो वैसे ही चलेगी जैसी चलती चली आ रही है। किसी के साथ मगजपच्ची क्यों करना!' पुंसक सज्जन वे हैं जो जहां अपने सौजन्य की रक्षा करते हैं वहां वे दूसरों को भी सज्जन बनाने की चेष्टा तथा प्रेरणा करते हैं। साथ ही, सौजन्य और दौर्जन्य में टकराव होने पर वे दौर्जन्य को परास्त करके सौजन्य को जिताकर ही दम लेते हैं। सौजन्य की पराजय न उन्हें स्वीकार्य होती है, न सह्य।

पुंसक सज्जनों का कर्तव्य है कि वे नपुंसक सज्जनों को पुंसक सज्जन बनाएं, और जगह जगह जनसेवा तथा जनचेतना करके जनता को सज्जनों के प्रभाव में लाएं। बात बनेगी संगठित होकर कार्य करने से ही। सर्वत्र किसी न किसी रूप में सज्जनों को एकता के सूत्र में सूत्रित होकर काम करना चाहिए। कलियुग में ही नहीं, सभी युगों में संघ की शक्ति अथवा संगठन का बल ही सुकार्यो अथवा दुष्कार्यों में सफलता का मुख्य साधन रहा है।

सौजन्य और सदाचार का बल दौर्जन्य और दुराचार के बल से कहीं बलवत्तर है। चार सज्जन चार सौ दुर्जनों को राहे रास्त पर ला सकते हैं, बशर्ते कि वे दृढ़ता और दृढ़ संकल्प के साथ साथ परस्पर सुगठित होकर कार्य करें।

पूर्ण से पूर्ण पुरुष में भी अपूर्णताएं रहती ही हैं। अपूर्ण-

ताएं बुरी नहीं हैं, बुरी तो बुराइयां हैं। हां, अपनी हर अपूर्णता को पूर्णता में परिणत करने की महत्त्वाकांक्षा बनी ही रहनी चाहिए। यह इतना संकेत मैंने इसलिए किया है कि सज्जनों का संगठन इसलिए नहीं हो पाता है कि उनमें एक दूसरे की अपूर्णताओं की चर्चाएं तो प्रायः होती हैं किन्तु उनमें एक दूसरे की पूर्णताओं की सराहना प्रायः नहीं होती है। एक दूसरे की अपूर्णताओं को पूरते हुए ही, सज्जन अभीष्ट को सिद्ध कर पाएंगे। समय बड़ी तेज़ी के साथ दौड़ रहा है, और समय की दौड़ के साथ बुराइयां भी बड़ी तेज़ी के साथ फैल रही हैं। विश्वसुधारकों को भी अपनी रफ्तार तेज़ करनी होगी।

सज्जन की परिभाषा

वेद में अनेक मन्त्र ऐसे हैं जिनमें सज्जन की परिभाषाएं की गई हैं। उन मन्त्रों की कसौटी पर कसकर सज्जन संघ का निर्माण आज की परिस्थितियों में सर्वथा असम्भव होजाएगा। आज तो न देवासः कवत्नवे (ऋग्वेद ७.३२.६) = (देवासः) देव जन, सज्जन देव-देवियां (कवत्नवे) कुत्सिताचार—दुराचार—भ्रष्टाचार के लिए (न) नहीं [प्रवृत्त होते हैं], सज्जन की, वस, इतनी ही परिभाषा सुपर्याप्त होनी चाहिए। जो कदाचार, कुत्सिताचार, कुकर्म, दुराचार, भ्रष्टाचार न करे वह सज्जन है। 'कवत्नु' शब्द में 'कु' का संस्कार है। 'कु' का अर्थ है बुरा। 'सु' का अर्थ है अच्छा, भला। जो कु से मुक्त और और सु से युक्त हो वह सज्जन है, भला मानस है। जो कुछ कु है वह सब दुर्जनता है। जो कुछ सु है वह सब सौजन्य है, सज्जनता है। जिस नर वा नारी के विचार, आचार और व्यवहार शुद्ध हैं उसे सज्जन समझा जाए। जिसका दाम्पत्य अथवा पारिवारिक जीवन शुद्ध है, जिसकी आजीविका शुद्ध है, जो उचित साधनोपायों से धन

कमाता है, जो न्यायशील, ईमानदार, सच्चा और खरा है, जो देशप्रेमी और राष्ट्रनिष्ठ है, जो सबके साथ सद्व्यवहार करता है, जो सामाजिक जीवन में स्वच्छ है और साम्प्रदायिकता और संकीर्णता से ऊपर उठा हुआ है उसकी संज्ञा सज्जन है। ऐसा इस वेदसूक्ति का आशय है।

सज्जन व्यसनदोष, स्वभावदोष और चरित्रदोष से सर्वथा मुक्त होता है। सज्जन के रहन-सहन का नहीं, चरित्र का स्तर ऊंचा होना चाहिए। रहन-सहन का स्तर ऊंचा करने की रट ने मानवसमाज को पतन के गहरे गर्त में ला पटका है। आज संसार में रहन-सहन का स्तर जितना ऊंचा उठा हुआ है, चरित्र का स्तर उतना ही नीचे गिर रहा है। रहन-सहन का स्तर जब ऊंचा होता है तो आवश्यकताएं बहुत बढ़ जाती हैं। आवश्यकताओं के बढ़ने पर धन का लोभ बढ़ता है। धन के लोभ से रिश्वत, मिलावट और बेईमानी का बाजार गर्म होता है। सरल रहन-सहन से जीवन की आवश्यकताएं कम होती हैं। परिणामस्वरूप, न धन की लोलुपता बढ़ती है, न अर्थ के लिए अनर्थ होता है।

विश्व के सुधार के प्रसंग में सज्जन का एक गुण यह भी होना चाहिए कि वह सारी पृथिवी को अपना एक अभिन्न गृह माने, और सारी पृथिवी पर निवास करनेवाली सम्पूर्ण मानव-प्रजा को अपना एक अभिन्न परिवार जाने। मैं तो सदा से ही अपने विषय में यह घोषणा करता चला आ रहा हूँ कि 'सारी पृथिवी मेरा घर है, और पृथिवीस्थ, सारी प्रजा मेरा परिवार है।' वेदमाता जहां किसी भी देश के वासी को प्रेरणा करती है कि वह अपने देश को अपनी मातृभूमि माने वहां वह उसको यह भी आदेश देती है कि वह सारी पृथिवी को अपनी माता जाने। माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः (अथर्ववेद १२.१.१२)

में यही ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है। इस पृथिवी पर निवास करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को यह हृदयंगम कराना होगा कि 'जिस देश का तू निवासी है वह तेरी मातृभूमि है, और तेरा देश जिस पृथिवी के विशाल तनू का एक अवयव है तू उसका पुत्र है।'।

मानवजाति का विभाजन भी मानवजाति के पतन का एक साधारण नहीं, असाधारण कारण है। मानवजाति के विभाजन ने जहां पृथिवी की निर्बाधता को रुद्ध कर दिया है वहां उसने देश देश की पारस्परिक, संकुचित विलगता और राष्ट्र राष्ट्र की पारस्परिक, स्वार्थपरतापूर्ण शत्रुता को भी जन्म दिया है।

मुझे लगता है कि विश्वसुधार के साथ साथ, विश्व के सज्जनीकरण की दिशा में भी हमें योजनाबद्ध रीति से काम करना होगा। सज्जनीकरण और विश्वसुधार की साधना साथ साथ ही चलनी चाहिए।

रक्षा करो हमारी तुम सब,
जनसांगलिक उपायों द्वारा।

८ सज्जनीकरण

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष
धिया कृतात् । अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया
दैव्यं जनम् ॥

ऋग्वेद १०.५३.६

१) (रजसः तन्तुस् तन्वन्) लोक [संसार] के तन्तु को तनता हुआ (भानुस् अनु इहि) सूर्य को/का अनुसरण कर।

२) (धिया कृतात्) धी द्वारा निर्मित, गहन चिन्तन द्वारा बनाए गए (ज्योतिः-मतः पथः) ज्योतिर्मय पथों को/की (रक्ष) रक्षा कर।

३) (जोगुवाम्) चिर-अनुभवियों के (अन्-उल्बणम् अपः) उलझनरहित

कर्मप्रवाह को (वयत) गति दे, प्रवाहित रख ।

४) (मनुः भव) मनु हो; (जनय दैव्यम् जनम्) प्रकट/प्रकाशित कर दिव्य जन [सज्जन], जन्म दे दिव्य जन को, जन्म दे दिव्य पुत्र-पुत्री को ।

यह सज्जनीकरण की विधि है ।

१) मानव ! मानवसमाज ! तू (मनुः भव) मनु हो, मननशील बन, समझदार बन, मनुष्य बन ।

‘मनु’ का अर्थ है मननशील, समझदार, सोच-समझकर काम करनेवाला मनुष्य । पशु और मानव में यही तो अन्तर है । मनुष्य बुद्धिप्रधान प्राणी है । पशु भोगप्रधान प्राणी है । आश्चर्य है कि बुद्धि रखनेवाला प्राणी, यह मानव भोगप्रधान बनता चला जा रहा है, और आंखें रखते हुए, और आंखों के ऊपर मस्तिष्क तथा नीचे हृदय होते हुए भी उन व्यसनों और विलासों के पीछे दौड़ रहा है जो सर्वनाश के गर्त में गिराकर मानवजाति के सर्वस्व को ध्वस्त कर देंगे । मानव मानव बन जाए तो मानव का सौभाग्य जाग जाए । मानवजाति का सबसे बड़ा अभिशाप यही है कि वह मनुष्यरूप होता हुआ भी पशुवत् वर्त रहा है ।

किसी भी मनुष्यरूप प्राणी से प्रश्न कीजिए, ‘आप कौन हैं?’ इस प्रश्न के उत्तर में कोई कहेगा, ‘मैं मुसलमान हूँ,’ कोई कहेगा, ‘मैं ईसाई हूँ,’ कोई कहेगा, ‘मैं यहूदी हूँ,’ कोई कहेगा, ‘मैं सिख हूँ,’ कोई कहेगा, ‘मैं पारसी हूँ, मैं जैन हूँ, मैं बौद्ध हूँ, मैं अमुक-पन्थी हूँ ।’ पर इस प्रश्न के उत्तर में कोई भी यह न कहेगा कि ‘मैं मनुष्य हूँ, आपका मानवबन्धु हूँ ।’ जब मनुष्य अपने आपको मनुष्य ही नहीं कहता तब वह यह कैसे समझेगा कि मनुष्यता ही मनुष्य का धर्म है, मानवता ही मानव का धर्म है, इंसानियत ही इंसान का धर्म है ?

राष्ट्रीयतावादी हैं जो सम्प्रदायों से दूर रहते हैं। किन्तु वे भी इस प्रश्न का कि 'आप कौन हैं' कुछ और ही उत्तर देते हैं। उनसे पूछिए, 'आप कौन हैं,' तो कोई कहेगा, 'मैं अमेरिकन हूं,' कोई कहेगा, 'मैं जर्मन हूं, मैं अफ्रीकन हूं,' कोई कहेगा 'मैं आस्ट्रेलियन हूं।' कोई भी यह न कहेगा कि मानव हूं, आपका मानवबन्धु हूं।

एक विशेष वर्ग के लोग हैं जो वादों [isms] में रंगे हुए हैं। उनमें से किसी से प्रश्न कीजिए, 'आप कौन हैं?' उत्तर मिलेगा, 'मैं समाजवादी हूं, मैं साम्यवादी हूं, मैं अमुकवादी हूं।' कोई भी तो यह न कहेगा कि 'मैं मानव हूं और मानवता के सूत्र में सूत्रित हुआ, मैं मनुष्यमात्र से सम्बद्ध हूं।'।

वेदमाता यह नहीं कह रही है कि 'तुम अपने सम्प्रदाय को त्याग दो,' न यह कि 'तुम अपनी राष्ट्रीयता का परित्याग कर दो,' न यह कि 'तुम वादों को छोड़ दो।' वह तो केवल यह कह रही है कि, किसी भी सम्प्रदाय, राष्ट्र वा वाद से सम्बद्ध रहते हुए, तुम शुद्ध मानव बनो और मानवधर्म का पालन करो।

पृथिवी पर निवास करनेवाली, सम्पूर्ण मानवप्रजा को यह समझाने की आवश्यकता है कि 'तुम मूलतः मानव हो, जन्म तुम्हारा किसी भी सम्प्रदाय में क्यों न हुआ हो।' उन्हें यह भी समझाने की आवश्यकता है कि 'मानव होने के नाते, मूलतः तुम्हारा धर्म मानवता है, सम्प्रदाय वा राष्ट्र वा वाद तुम्हारा कुछ भी क्यों न हो।' पशु का धर्म पशुता है, और इंसान का धर्म इंसानियत है, यह मान्यता जब मनुष्यमात्र की होगी तभी विश्वसुधार का पथ प्रशस्त होगा। इस प्रकार समझने-समझाने से सर्व मानवों में मानवता की भावना भावित होगी, और वे पशुता से ऊपर उठेंगे। तब वे जानेंगे कि सम्प्रदाय, राष्ट्र तथा वाद के अभिमान से कहीं उच्च मानवता तथा मानवधर्म का अभिमान है। तब वे यह भी अनुभव करेंगे कि मानव होने के

नाते उनमें पशुता नहीं, मानवीयता होनी चाहिए। पशुता और मानवता के अन्तर का भान होने पर मनुष्य मानव बनेगा।

वस्त्र जब स्वच्छ होजाता है तब उस पर प्रत्येक रंग खिलता है। मनुष्य शुद्ध मनुष्य हो तो किसी भी सम्प्रदाय, राष्ट्र वा वाद का रंग उसे अमृतमय मानव बना देता है। मानवता वह अमृत है जो साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता तथा वाद में अन्तर्निहित, सम्पूर्ण विष का निराकरण कर देता है। मानवता ही है जो मानव को अपने मानवरूप में अवस्थित करके उसे दुरितों से मुक्त और भद्रताओं से युक्त करती है।

मनुर्भव सूक्ति में एक और गहन भाव निहित है। '(मनुः भव) मनुष्य होजा, मनुष्य बन,' यह कब कहा जाता है? जब कोई, सभ्य समाज के सभ्य नियमों का उल्लंघन करके, असभ्य व्यवहार करता है तो आप उससे कहते हैं, 'तू आदमी है कि जानवर, इंसान है कि हैवान?' आकृति से मनुष्य होते हुए भी जो पशुवत् व्यवहार करता है उसके प्रति यह सूक्ति लागू होती है।

मनुर्भव, आदमी बन, बी मैन. यह सूक्ति आज मानवजाति के लिए कदम कदम पर कही जाने योग्य एक चेतावनी का काम देगी। साथ ही, मानव और मानवता की सेवा करने-वालों के लिए यह एक दिशासूचक सन्देश है। कदम कदम पर मानवीय नियमों का उल्लंघन हो रहा है। यह पृथिवी, जिस पर हम निवास कर रहे हैं, बहुत पुरानी है, और उतनी ही पुरानी है यह मनुष्यजाति। न जाने, कितनी शिक्षाप्रद ठोकरों, कितनी कठोर, सतत साधनाओं और कितने मूल्यवान् परीक्षणों तथा अनुभवों की भित्ति पर मानवजाति को उन शाश्वत आधारों पर आधारित कर पाया गया था जिन पर स्थित रहकर मानवप्रजा सुख, शान्ति और स्वस्ति का चिर काल ब्रह्म

आस्वादन कर सकी थी। पाश्चात्य, असभ्य सभ्यता की अभिमानी, सुसम्पन्न और समुन्नत कही जानेवाली जातियों की ओर से उसी भित्ति और उन्हीं आधारों को धराशायी करने का अभियान बड़ी तेजी के साथ चलाया जा रहा है। उस अभियान की छाया और माया सारी पृथिवी पर विद्युद्भेग के साथ फैलती चली जा रही है, और भारत भी बड़े वेग से उसकी चपेट में आ रहा है।

पतिव्रत और पत्नीव्रत की सुपावन भावना को सोपहास तिरस्कृत किया जाने लगा है। क्या इस भावना को चूर चूर करके मानव निरा पशु नहीं बन जाएगा, और उससे सप्रेम वा साक्रोश 'मनुर्भव' कहना न पड़ेगा? नर और नारी के लज्जाङ्गों को अदब के साथ ढकने की सुप्रथा को पिछड़ेपन का लक्षण बताकर त्यागा जा रहा है। शिक्षित अथवा सुशिक्षित वर्ग की पोशाक नंगापन के निकट पहुंच गई है, और दिन-प्रतिदिन निकटतर से निकटतम होती जा रही है। सम्भव है, यह इतना सह्य हो सके। पर अब तो नारी नितान्त नगनावस्था में सार्वजनिक रूप से स्टेज पर आकर अपने सम्पूर्ण अंगों का फ़ख्र के साथ प्रदर्शन करने लगी है, और नरसमाज ही नहीं, नारीसमाज भी, सौ-सौ, पचास-पचास रुपए के टिकट खरीदकर उस तमाशे को देखने जाना अनुचित नहीं, उचित समझता है। क्या आप उनसे 'मनुर्भव, बी मैन' कहने का साहस रखते हैं? सब ओर उमड़ते हुए व्यसनी विलासियों के प्रति 'मनुर्भव' कहने का क्या आपमें नैतिक बल है?

स्वामी के प्रति निष्ठा का, और सेवक के प्रति सहृदयता का जो सुहावना सम्बन्ध था वह टूट रहा है। स्वामी सेवक का शोषण करता है, और सेवक स्वामी की हत्या। भाईचारा स्वार्थपरता का घृणित साधन बन गया है। नेता का सुशोभन

पद 'गुण्डाई' का पर्यायवाची शब्द बन गया है। व्यसन और विलास सुनहरी सोसायटियों का सभ्याचार समझा जाने लगा है। रिश्तत, दुराचार, व्यभिचार, लूट-पाट, बलात्कार, डाका-जनी, हत्या साधारण बातें बन गई हैं। पितृभक्ति गुरुभक्ति, बड़ों का मान, ईमानदारी, सचाई, भ्रातृप्रेम, मित्रस्नेह, सब कहने की बातें रह गई हैं। क्या आप इस प्रकार के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति 'मनुर्भव, इंसान बन; हैवाँ न बन, बीमैन; बी नॉट ब्रूट' कहने की हिम्मत रखते हैं? ये और ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहाँ आपको बिना फिझक, अपने हृदय के सम्पूर्ण प्यार के साथ कहना चाहिए, 'मेरे प्यारे! मनुर्भव, मनुष्य बन, डीअर माइन! बीमैन।'

दूसरों की अनुचित बातों और उनके अशोभनीय कृत्यों पर यदि आप 'मनुर्भव' नहीं कह सकते तो न सही। स्वयं आपके अपने ही जीवन में ऐसी बातें होती होंगी, स्वयं आप ऐसी बातें कहते और करते होंगे जिन पर आपको स्वयं अपने आपसे 'मनुर्भव' कहना चाहिए। तो, ऐसा तो आप बिना किसी आपत्ति के कर सकते हैं। यदि आप प्रतिदिन एक नियत समय पर आत्म-निरीक्षण करने लग जाएं तो, निश्चय ही, आपको अपनी अनेक कृतियों पर स्वयं अपने आपसे 'मनुर्भव' कहना पड़ेगा, और ऐसा कहते कहते आप विशुद्ध मानव बन जाएंगे। काश, सभी देशों के नेता और शासक आत्मनिरीक्षण के अभ्यासी बन जाएं तो नित्य ही उनका अपना अपना आत्मा उनसे 'मनुर्भव, बीमैन, इंसान बन' कहेगा, और वे इंसान बन जाएंगे। ये इस्लाम, ईसाईयत, सिख, जैन, बौद्ध, आदि पन्थों के अनुयायी, और ये इज्जतों, वादों और राजनीतिक सम्प्रदायों के अभिमानी यदि नित्य आत्मनिरीक्षण करने लग जाएं तो ये भी अपने आपको 'मनुर्भव' कहेंगे, और मनुष्य बनेंगे। वेद की इस परम सुधारक

सूक्ति के सार्वभौम प्रयोग से सारा संसार मनुष्य बन सकता है, और विश्व का पूर्ण सुधार हो सकता है। सभी स्थानों पर, सारी पृथिवी पर, ट्रनों में, बसों में, गलियों में, पार्कों में, विद्यालयों में, खेल के मैदानों में, बाजारों में, सर्वत्र 'मनुर्भव,' 'मनुष्य बन,' 'बी मैन,' 'इंसान बन,' ऐसा लिख और लिखा दीजिए। विश्वसुधार में इससे बड़ी सहायता मिलेगी।

२) जनया दैव्यं जनम्, जन दिव्यता से युक्त जन को; जन्म दे दिव्य जन को। इस मन्त्र की यह उद्बोधक सूक्ति एक दिव्य सन्देश दे रही है। जनना अथवा जन्म देना माता का काम है। जनना अथवा जन्म देना अपने आपमें कोई महत्त्व नहीं रखता है। सन्तान पैदा करना एक मामूली काम है। देखना तो यह है कि माता कैसे पुत्र-पुत्रियों को जन्म देती है। जीवन का निर्माण जन्म होने के पश्चात् से नहीं, गर्भस्थिति के क्षण से ही होता है, बल्कि गर्भस्थिति से भी पहले से होता है। गर्भाधान से पूर्व दम्पती शुद्ध मानव बनें, दिव्य दम्पती बनें; तभी वे दिव्य जनों को जन्म दे सकेंगे। दिव्य जन ही विश्व का सज्जनीकरण कर सकेंगे। माता-पिता जैसे होंगे वैसे ही जनों को वे जन्म देंगे। कभी कभी ऐसा भी होता है कि बच्चों के विद्यालयों में प्रविष्ट होने पर, माता-पिता के सब प्रयास बेकार चले जाते हैं। सु-संस्कारी बालक भी कुसंस्कारी अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के सम्पर्क में आने पर ऐसे बिगड़ते हैं कि उन्हें सुधारना मुश्किल होजाता है।

गृहस्थों के गृह, और आचार्यों के विद्यालय, दोनों ही जब दिव्य धाम बनेंगे, साथ ही माता-पिता और अध्यापक-अध्यापिका जब देवता बनेंगे तभी मानवसमाज में देवियां विश्व की दिव्य नागरिकाएँ, और देव विश्व के दिव्य नागरिक बन पाएँगे। तभी पृथिवीस्थ मानवपरिवारों का वह भाग्योदय होगा कि विश्व

का सज्जनीकरण होगा ।

गायों, बैलों, गधों, घोड़ों, कुत्तों, बिल्लियों की नस्लवृद्धि में सब संलग्न हैं । आश्चर्य की बात है कि मानव मानवों की नस्लवृद्धि की लेशमात्र परवाह नहीं कर रहे हैं । विज्ञान की असंख्य शाखाएं आज विकास के क्रम में तीव्र गति से व्यापती चली जा रही हैं । पर सब विज्ञानों के महाविज्ञान की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है । सन्ततिविज्ञान के समुचित रूप से विकसित और सर्वविदित होने पर ही दिव्य जनों को जन्म दिया जा सकेगा, और सारी पृथिवी के सज्जनीकरण की साध का प्रशस्तीकरण हो पाएगा ।

बिना पढ़ी-लिखी, अनेक सुसंस्कृता माताओं ने अनेक दिव्य जनों को जन्म दिया है । शोकमिश्रित आश्चर्य की बात है कि उच्चशिक्षा-प्राप्त जननियां दिव्य जनों को जन्म देने के बजाय, आसुरी सन्ततियों को जन्म दे रही हैं । दिव्य जनों को जन्म देने में शिक्षा-अशिक्षा अथवा पठिता-अपठिता का प्रश्न नहीं है । मुख्य प्रश्न सुसंस्कार का है । जिन माताओं ने दिव्य जनों को जन्म दिया वे भले ही पठित न थीं किन्तु सुसंस्कारों से सुसंस्कृत, सुसंयम से सुसंयत, सुभावनाओं से सुभावित तथा निर्दोष और निष्पाप थीं । इतिहास की यह एक वास्तविकता है कि सभी दिव्य जनों की माताएं अपठित अथवा अल्पपठित थीं । उनका जीवन निष्ठा और आस्था का जीवन था । आज की माताएं सुपठित तो हैं पर उनमें वह सत्त्व और तत्त्व नहीं है जो उन दिव्य जनों की अपठित, दिव्य जननियों में था ।

विश्व के सज्जनीकरण के लिए, निश्चय ही, हमें नारीजाति का दिव्यीकरण करना होगा । नारीजाति के दिव्यीकरण से जहां दिव्य जनों का जन्म होगा वहां नरसमाज का भी दिव्यीकरण होगा । स्त्रीशिक्षा का आज जो रूप है उसने नारीजाति

को आकाश से उठाकर भोग की भूमि पर पटक दिया है। इस शिक्षा से तो वह अशिक्षा लाख दर्जे अच्छी थी। इस शिक्षा ने नारी को विलास और मन-बहलाव की वस्तु बनाकर रख दिया है। उस अशिक्षा ने नारी में कूट-कूटकर देवत्व भर दिया था। तभी तो उन भोली-भाली, बिना पढ़ी-लिखी माताओं ने दिव्य जनों को जन्म दिया था।

जिस नारी के लिए वेद ने कहा था, 'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ' (ऋग्वेद ८.३३.१६), स्त्री ही ब्रह्मा हुई है, वही स्त्री आज क्या बन गयी है! नरसमाज से नारी के उत्थान की आशा करना मूर्खों के स्वप्न में विचरना है। स्वयं नारी को ही अपने उत्थान के लिए कमर कसनी होगी, स्वयं नारी को ही अपना शोधन और बोधन करना होगा, स्वयं नारी को ही दिव्य जनों की जननी बनने की सुसाधना करनी होगी।

३) (रजसः) लोक [संसार] के (तन्तुम् तन्वन्) तन्तु को तनता हुआ (भानुम् अनु इहि) भानु को अनु-सर, सूर्य का अनुसरण कर।

मानवशरीर में मस्तिष्क वह भानु है, वह प्रकाशपुञ्ज सूर्य है जिसकी रोशनी में कर्तव्य कर्मों के ताने-बाने को बहुत सुन्दरता के साथ बुना जा सकता है। 'तन्तु' से तात्पर्य ताने-बाने से है, और 'तन्वन्' से बुनना से। कपड़ा बुनना बुद्धिमानों का काम है। ताने-बाने को सुव्यवस्थित करके, बुद्धिमान बुनकर कपड़े के सुन्दर सुन्दर थान तयार करता है, जिनसे शरीर को सुशोभित करनेवाली, शोभन पोशाकें तयार की जाती हैं।

कर्तव्य ताना है और क्रियान्वयन बाना है। कर्तव्य का बोध भी बुद्धि कराती है, और कर्तव्य को कार्यरूप में परिणत कराने की विधि भी बुद्धि ही बताती है। बुद्धि के दो भेद हैं, सुमति और कुमति। कर्तव्यबोध में सुमति और कुमति का उत्पन्न

महत्त्व नहीं है जितना कर्तव्य को कार्यरूप में परिणत करने की विधि में। जीवननिर्वाहार्थ धन कमाना चाहिए, इस तथ्य की जानकारी के लिए सुमति वा कुमति का प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि धन किस प्रकार कमाना चाहिए। सुमति कहती है, 'धन धर्मपूर्वक कमाना चाहिए, भले ही कमाई थोड़ी हो।' कुमति कहती है, 'धर्माधर्म, पाप-पुण्य, उचितानुचित की परवाह न करो। किसी भी तरह खूब धन बटोरो। धनवान् बनो। मान पाओ। मौज उड़ाओ।' सुमति कहती है, 'शुद्ध साधनों से शुद्ध धन कमाओ। मोन्स फ्रेअर, वैल्थ फ्रेअर, कुमति कहती है, 'धन का ढेर लगाओ। साधनों की पवित्रता और अपवित्रता का विचार न करो। मोन्स फ्रेअर और फाउल, अमास् मनी।'।

पृथिवी का कोई भाग जब सूर्याभिमुख होता है, उस पर सूर्य की किरणें प्रकाश पूर देती हैं। पृथिवी का कोई भाग जब सूर्यविमुख होता है, उस पर अन्धकार आच्छादित होता है। सुमति प्रकाश है; कुमति अन्धकार है। कर्तव्य असंख्य और अनन्त हैं। उनका पालन सुमति के प्रकाश में किया जाना चाहिए। प्रत्येक मानव जब, जहां खड़ा, बैठा वा नियुक्त है तब, तहां कोई न कोई कर्तव्य शरीर की छाया की तरह उसके साथ लगा हुआ है। प्रत्येक मानव प्रतिक्षण प्रत्येक कर्तव्य का निर्वहन सुमति के प्रकाश में करने लग जाए तो जन जन सज्जन बनता चला जाए, और मानवजाति के सज्जनीकरण की साध सहज और सरल होजाए।

'कर्तव्य कर्मों के ताने-बाने को बुनता हुआ सुमति से युक्त रह,' इस सूक्ति का जन जन को यह सत्सन्देश है। आप इसे जन जन तक पहुंचाने का सदा ध्यान रखिए। राष्ट्रपति से लेकर निम्नतम व्यक्ति को आज इस चेतावनी की आवश्यकता है।

जहाँ भी कोई अपने कर्तव्य का पालन न कर रहा हो अथवा ग़लत तरीकों का इस्तेमाल कर रहा हो, आप उससे बड़े प्रेम के साथ कहिए, 'तन्तु' तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ।'

संसार के ताने-बाने के बुनने के लिए ही प्रकाश की आवश्यकता है, उपराम और निरुपाय होकर कोने में बैठने के लिए नहीं । संसार के झंझटों में झंझटरहित रहते हुए जौहर कीजिए, और भूले-भटके-बहके संसार को सुमति का दान देते रहिए । प्रकाश ही अन्धकार का जवाब है । सुमति ही कुमति का इलाज है । संसार के ताने-बाने में आप कितने भी व्यस्त क्यों न हों, सूर्य का अनुसरण करते हुए, मानवजाति को विवेक प्राप्त कराते रहिए । संसार के अन्धकार को दूर करने के लिए आपको न अन्धकार से टकराना है, न अन्धों से । केवल सूर्य बनकर सामने आना है । सूर्य ज्यों ही अन्धकार के सामने आता है कि अन्धकार भग जाता है । यही सूर्य का वास्तविक अनुकरण है । यही अन्धकार के निराकरण की सही विधि है ।

व्यस्तता बहुत अच्छी चीज़ है । शुभ, श्रेष्ठ में निरन्तर, अतिशय व्यस्त रहते हुए सदा, सर्वत्र सूर्य बनकर विचरिए, सब ओर प्रकाश पूरते हुए अपने विचार, आचार तथा व्यवहार से सबको सुमति का सक्रिय दान देते हुए विचरिए । सारी पृथिवी आपका अपना घर है । सम्पूर्ण मानवजाति आपका अपना प्यारा परिवार है । आप जहाँ भी हैं अपने घर में हैं, और अपने परिवार में हैं । सर्वत्र अपने ताने-बाने को बुनिए, और सबको अपनी वाणी, लेखनी, दृष्टि, मुस्कान और चाल से सुमति प्रदान करते रहिए । मत समझिए कि विशाल संसार में आप एकले प्रकाश न कर पाएंगे । सूर्य एकाकी चरति (यजुर्वेद २३.१०; ४६) । सूर्य चलता है, एकला चलता है, निरन्तर चलता है और निरन्तर ही प्रकाश प्रदान करता रहता है । आप चलिए, एकले चलिए,

निरन्तर चलिए और प्रकाश करते हुए चलिए। आपका अनुकरण करके, कालान्तर में अनेक मानव सूर्य बनेंगे। आपके जीवनकाल में नहीं तो आपके महाप्रयाण के बाद बनेंगे। सच्ची साधना कभी निष्फल नहीं जाती है। नो टू, एफ़र्ट इज एवर लॉस्ट। सज्जनीकरण का यह राजपथ है, यह शाहे राह है।

४) (धिया कृतान्)धी [गहन चिन्तन] द्वारा निर्मित(ज्योतिः-मतः पथः) ज्योतिर्मय पथों को/की (रक्ष) रक्षा कर। यह एक चेतावनी है, चिन्तनीय तथा मननीय। मानवसमाज को चाहिए, धीमानों ने, वैदिक ऋषियों तथा मनीषियों ने धी [धारणा, ध्यान, समाधि] द्वारा, बहुत सोच-समझकर, वेद के आश्रय से जो ज्योतिर्मय पथ निर्मित किए हैं, जो आधार और आदर्श स्थापित किए हैं उन्हें खण्डित न करें, अपि तु सावधानी के साथ, सतर्कतापूर्वक उनकी रक्षा करें। वेदमाता की इस शिक्षाप्रद गुहार और पुकार पर, इस भूमण्डल पर निवास करनेवाले सर्व मानवों को, और विशेषकर विश्वसुधार के दावेदार जननायकों को ध्यान देना चाहिए।

आधुनिकता के अभिमानियों को आधुनिकता के जोश में इस पुकार को दर-गुजर न करना चाहिए। जोश के साथ जब होश नहीं रहता है तो लाभ नहीं, हानि होती है; सुधार नहीं, बिगाड़ होता है, और अन्त में हाथ मल-मलकर पछताना पड़ता है। यही स्थिति आज संसार की है। आधुनिकतावादियों की मूर्खताओं के कारण ही आज मानवजाति उच्छृंखलता के मंचों पर नग्न नृत्य कर रही है, और उन मंचों के नीचे दारुण दुःखों तथा भयानक क्लेशों की बाढ़ें आरही हैं। कौमार्य तथा दाम्पत्य शुचिता के ज्योतिर्मय पथ को नष्ट करने का ही परिणाम है कि पारिवारिक जीवन का सुख-सौभाग्य उजड़ता जा रहा है, और व्यभिचार तथा विच्छेद [तलाक़] का बाजार गर्म है। मर्यादा-पालन के ज्योतिर्मय पथ को मिस्मार करने का ही परिणाम

यह विश्वव्यापी अनुशासनहीनता तथा निर्लज्जता है। ईश्वर-भक्ति, योगाचार तथा धर्माचरण के उज्ज्वल पथों को विनष्ट करके मानवजाति खूनख्बार दरिन्दों से अधिक भयंकर होती चली जा रही है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, कैसे ज्योतिर्मय थे जीवन के ये दश पथ ! कितने सुखी और आनन्दित थे विश्व के सभी मानव जब वे इन पथों पर चलते थे ! कितने शोभन और सुहावने थे ये धीकृत ज्योतिर्मय पथ ! और भी अन्य अनेक ऐसे ही पथ थे जिनकी, काश, मानव द्वारा रक्षा की जाती तो मानवजाति को ये दुर्दिन न देखने पड़ते ।

जो होगया सो होगया। आइए, पृथिवीवासी हम सब मानव मिलकर समस्त नष्ट ज्योतिर्मय पथों की फिर से सुरचना करें। उन सुपथों को इतना क्षत-विक्षत किया जा चुका है कि उनकी मरम्मत करना सर्वथा असम्भव है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक जीवन के सारे ही सुन्दर राजपथ बुरी तरह ध्वस्त किए जा चुके हैं। सर्वत्र नवनिर्माण करना होगा। किन्तु प्रत्येक नवनिर्माण होगा उन्हीं धीकृत, ज्योतिर्मय आधारों पर जिन पर वे पूर्व ज्योतिर्मय पथ निर्मित किए गए थे। आधार वे पूर्व धीकृत ही होंगे, केवल निर्माण नए होंगे, निर्माता नए होंगे, विश्वकर्मा नए होंगे। भारत ही नहीं, सारी पृथिवी पुनः उन ज्योतिर्मय पथों पर चलने के लिए अधीर, आकुल और व्याकुल हो रही है। कहां मिलेंगे धी और वेद के आश्रय से ज्योतिर्मय पथों के नए सिरे से निर्माण करनेवाले विश्वकर्मा ? वे मिलेंगे उस देश में ही जो कभी 'आर्यावर्त' कहलाता था और अब 'भारत' कहलाता है। अन्यत्र तो ज्योतिर्मय पथों की न कल्पना ही की जा सकती है, न योजना ही बनाई जा सकती है। भारत में भी वे विश्वकर्मा वहीं वहीं मिलेंगे जहां जहां वैदिक विचार, वैदिक आचार

और योग-जीवनपद्धति की साध है। वे वैदिक विश्वकर्मा देश-देशान्तरों में जाकर प्रदेश प्रदेश में वैदिक विश्वकर्माओं का निर्माण करेंगे। आवश्यकता है कि मिशनरी भावनाओं से ओत-प्रोत, वैदिक विश्वकर्माओं के निर्माण की अविलम्ब व्यवस्था की जाए। विलम्ब पहिले ही पर्याप्त हो चुका है। और अधिक विलम्ब हुआ तो स्थिति असाध्य हो जाएगी, और पुनर्निर्माण असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य होजाएगा।

५) मानव ! (जोगुवाम्) चिरानुष्ठानियों/अनुभवियों के (अनु-उल्लङ्घनम्) अनु-अतिरिक्त, अव्यर्थ, उलङ्घनरहित, सरल (अपः) कर्मप्रवाह को (वयत) गति दे, प्रवाहित रख।

अनुभव के समान अन्य कोई शिक्षक नहीं है। यह संसार जिसमें, और यह पृथिवी जिस पर हम निवास कर रहे हैं, अरबों बरस पुराने हैं। आदि से ही जीवन के अनुष्ठान की विधियों का परीक्षण करते हुए जो अनुभव पर अनुभव प्राप्त किए गए उन अनुभवों से अनुभूत अनुभवियों ने छांट-छांटकर जिन भ्रष्टरहित, उलङ्घनरहित, सरल कर्मप्रवाहों की सरिताएं प्रवाहित की हैं उन्हें प्रवाहित रखने में मानवजाति का कल्याण निहित है।

सरलता और स्वाभाविकता जिन कर्मों में हों वे कर्म ही अनुल्लङ्घन हैं, भ्रष्टरहित अथवा उलङ्घनरहित हैं। कृत्रिमता और अस्वाभाविकता जिन कर्मों में हों वे उल्लङ्घन हैं, भ्रष्ट और उलङ्घन में फंसानेवाले हैं। चिरानुष्ठानियों और अनुभवियों का यह कहना सही है कि मानवों के कर्मप्रवाह अथवा क्रिया-कलाप में ज्यों ज्यों, जितनी जितनी बनावट, दिखावट और कृत्रिम सजावट आती जाती है त्यों त्यों और उतनी उतनी ही मानवजाति के मानवीय स्तर में गिरावट आती जाती है।

संस्कृति, सभ्यता और कला के नाम पर सारी पृथिवी पर

कितना पाखण्ड, अनाचार और असत्याचार व्याप रहा है ! यौन शुचिता का स्थान जिस यौनाचार अथवा यौन विज्ञान ने लेलिया है, क्या उसने मानव को पशु से बदतर नहीं बना दिया है ? मानवधर्म जैसी सरल और स्वाभाविक वस्तु को कृत्रिम मजहब, दीन, सम्प्रदाय में परिणत करके, मानवों ने स्वयं अपने हाथों से अपने सौभाग्य को उजाड़ कर दुर्भाग्य को पनपाया हुआ है । अपने अपने क्षेत्र में इन तथाकथित धर्मियों और मजहबियों को समझाई कि 'मनुष्य का धर्म केवल मनुष्यता है । इंसान का धर्म केवल इंसानियत है । धर्म वा मजहब के नाम पर जो देशों का विभाजन, मार-काट, कुस्तो खून और घात-पात हो रहा है वह मजहब नहीं है, हैवानियत है ।' इकबाल ने ठीक ही तो कहा था, 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर करना ।' सच-मुच, धर्म तो मनुष्यमात्र को एकत्व में पिरोनेवाला सूत्र है ।

रहन-सहन की स्तरवृद्धि के नाम पर जीवन की कृत्रिम आवश्यकताओं की कितनी वृद्धि होगई है ! सरल रहन-सहन और उच्च विचार का आदर्श हवा होगया है । जीवन के जिन आधुनिक मूल्यों की दुहाई दी जा रही है उन्होंने जीवन के शाश्वत मूल्यों को धराशायी कर दिया है । अष्टाचारों को जीवन के आधुनिक मूल्यों की संज्ञा दी जा रही है । जीवन के शाश्वत मूल्यों को पिछड़ापन बताया जा रहा है । इससे जीवन और जीवन की समस्याएं दिन-प्रतिदिन उलझती चली जा रही हैं ।

देखते देखते देशों और राष्ट्रों की शासन, सुरक्षा, शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी पद्धतियां कितनी पेचीदा और उलझनपूर्ण होगई हैं ! जो विद्यार्थिजीवन अतिशय सरल, संयत और सात्त्विक होना चाहिए था वह कितना विकृत, असंयत और उच्छृंखल होता जा रहा है । आचार्य [अध्यापक] के जीवन की सरलता और स्वाभाविकता सर्वथा काफ़ूर होगई है । ब्याह,

शादी, रीति, रिवाज जटिल से जटिलतर होते चले जा रहे हैं।

विश्वसुधार को दिशा में सरल, सीधे कर्मप्रवाह के महत्त्व को समझिए और समझाइए। मानवजीवन के प्रत्येक पार्श्व में सरलता, स्वाभाविकता तथा साधुता की व्याप्ति कीजिए। कर्मों की स्वाभाविकता तथा सरलता को सारे विश्व में व्यापने का प्रयास कीजिए।

तनता हुआ लोक का तन्तु,
कर अनुसरण सूर्य का तू।
रक्षा कर धी द्वारा निर्मित,
ज्योतिर्मय सुपथों की।
प्रवाहित रख चिरानुभवियों
के स्वाभाविक कर्मप्रवाह को।
मानव बन; जन दैव्य जन।

६ महामन्त्र

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥
अथर्ववेद १२.१.१

विश्वसुधार का यह महामन्त्र है।

इस मन्त्र में सार्वभौम नागरिकता की भावना ओत-प्रोत है। वेद में मातृभूमि तथा राष्ट्र की रक्षा और सेवा की शिक्षा दी गई है। किन्तु वैदिक देशप्रेम और राष्ट्रप्रेम, सार्वभौम समृद्धि तथा सार्वभौम नागरिकता से स-लग है, वि-लग नहीं। जिस प्रकार गृहों के समूह का नाम ग्राम अथवा नगर है उसी प्रकार देशों के समूह का नाम पृथिवी, भूमि, अदिति है। अलग

अलग गृहों के होते हुए भी, सब गृह मिलकर नगर वा ग्राम बनाते हैं। अलग होते हुए भी सब देश और राष्ट्र अखण्ड पृथिवी की अभिन्न इन्द्रियां हैं। इसी दृष्टि से, जहां वेदमाता ने देशप्रेम और राष्ट्रप्रेम की शिक्षा दी है वहां उसने पृथिवीनिष्ठा तथा सार्वभौम एकता की भी शिक्षा की है।

मानवशरीर के किसी भी एक अङ्ग वा अवयव में पीड़ा होती है तो सारा शरीर बेचैन रहता है। वैसे ही, पृथिवीस्थ किसी भी एक देश के पीड़ित होने पर पृथिवी के सारे तनू में वेदना होती है। और आज, जब कि आवागमन के सुलभ साधनों और अन्तरराष्ट्रीय नैर्भर्यों ने पृथिवी के सभी देशों को एक दूसरे देश का घर-आंगन बना दिया है, यह सार्वभौम संवेदन और भी अधिक व्यापक होगया है। इसी लिए आज एक देश की बुराई वा भलाई, दुःख वा सुख, हित वा अहित अन्य देशों में बड़े वेग के साथ व्याप जाता है। प्रत्येक इन्द्रिय के नीरोग और स्वस्थ होने पर सारा शरीर नीरोग और स्वस्थ होता है। सारे शरीर के नीरोग और स्वस्थ होने पर प्रत्येक अवयव नीरोग और स्वस्थ रहता है। वैसे ही, देश देश के स्वस्थ और सम्पन्न होने पर सारी पृथिवी स्वस्थ और सम्पन्न होती है, और सारी पृथिवी के स्वस्थ और सम्पन्न होने पर प्रत्येक देश स्वस्थ और सम्पन्न रहता है। मानवदृष्टि से इस तथ्य के ओभूल होजाने से ही आज देशप्रेम और राष्ट्रनिष्ठा वरदान के बजाय भयंकर अभिशाप बनकर विश्व के सामने खड़े हैं। उन अभिशापों की ज्यों ज्यों चिकित्सा की जा रही है त्यों उनकी दिन-दूनी और रात-चौगुनी वृद्धि होती चली जा रही है।

वेदमाता कहती है—

१) (सत्यम् बृहत्) बृहत् सत्य, (ऋतम् उग्रम्) उग्रः ऋत,

(दीक्षा) दीक्षा, (तपः) तप, (ब्रह्म) ब्रह्म, (यज्ञः) यज्ञ; ये छह आधार (पृथिवीम् धारयन्ति) पृथिवी को धारण करते हैं।

‘पृथिवी को धारण करने’ से तात्पर्य पृथिवीवासियों को सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त कराने से है।

२) (नः) हमारे, हम सब मानवों के (भूतस्य भविष्यस्य पत्नी, सा पृथिवी) भूत और भविष्यत् की स्वामिनी, वह पृथिवी (नः) हमारे लिए, पृथिवी पर निवास करनेवाले हम सब मानवों के लिए (उरुम् लोकम्) विस्तृत लोक, विशाल क्षेत्र [खुला] (कृणोतु) करे—पृथिवीवासियों की यह आत्मकामना है।

पृथिवी मानवों के भूत और भविष्यत् की स्वामिनी है। भूत और भविष्यत् के मध्य में वर्तमान निहित है। भूत का परिणाम वर्तमान है। वर्तमान का परिणाम भविष्यत् होगा। भूत बोत गया। भविष्यत् परोक्ष में है। वर्तमान हमारे हाथ में है। वर्तमान की साधना का परिणाम भविष्यत् होगा। भूत की उपलब्धियों और भूलों से शिक्षा लेकर, अपने वर्तमान में हमें इस पृथिवी के भविष्यत् को उज्ज्वल बनाने की सफल साधना करनी है। भूत से प्राप्त सकल दुरितों का परित्याग करके, वर्तमान में हमें ऐसी सुपावन साधना करनी चाहिए कि आनेवाली मानवसन्ततियों के लिए सारी पृथिवी एक खुला हुआ, सुखद, कल्याणकर, निर्बाध क्षेत्र बन जाए। ऐसा तभी होगा जब हम आत्मना देश देश और राष्ट्र राष्ट्र में विभक्त पृथिवी का एक अभिन्न अदिति-माता के रूप में दर्शन करेंगे, और अदिति-माता की गोद में निवास करने वाली सम्पूर्ण मानवप्रजा को एक अभिन्न परिवार समझेंगे। तब सब देश एक दूसरे को अपना पड़ोसी और सहवासी समझेंगे, साथ ही एक दूसरे की सेवा, समुन्नति तथा अभावपूर्ति करेंगे।

निस्सन्देह, सम्पूर्ण पृथिवी को एक गृह और पृथिवी पर

निवास करनेवाली सम्पूर्ण मानवप्रजा को एक परिवार बनाने पर ही इस अदिति को वह स्वर्ग बनाया जा सकेगा जिसमें सभी प्राणी सुख, शान्ति, स्वस्ति और आनन्द का आस्वादन कर रहे होंगे। उसके लिए वेदमाता षट् साधनों का संकेत कर रही है।

प्रथम साधना है बृहत् सत्य, संकुचित नहीं, व्यापक सत्य। सारी पृथिवी पर सत्य की व्याप्ति से पृथिवीस्थ सर्व मानवों में पारस्परिक विश्वास की स्थापना होगी और, परिणामस्वरूप, सौहार्द तथा सौजन्य का वर्तन होगा। सत्य संयुक्त करता है। असत्य वियुक्त करता है। सत्य से प्रेम, असत्य से घृणा, यह प्रसिद्ध कहावत अक्षरशः सत्य है। आप अपने चारों ओर नित्य देख रहे हैं कि जिन परिवारों वा संस्थाओं में सत्य का वर्तन है उनमें परस्पर विश्वास और प्रेम है, और जहां सत्य नहीं है वहां परस्पर अविश्वास और घृणा है। असत्य ने मानवजाति का जितना विभाजन किया है उतना अन्य किसी बात ने नहीं।

न जाने कब से राजनीति तथा व्यापार में असत्य को नीति-मत्ता माना जा रहा है। अब समय है कि राष्ट्रीय तथा अन्तर-राष्ट्रीय राजनीति में सत्य की प्रतिष्ठा की जाए। यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति, परिवार, समाज वा राष्ट्र 'सत्येन ऊर्ध्वस्तपति' = सत्य से ऊंचा उठकर प्रकाशता है, और असत्येन अधः पतति = असत्य से नीचे गिरता है। सत्य से उत्थान होता है, और असत्य से पतन होता है। अन्तर्देशीय और अन्तरराष्ट्रीय मामलों में असत्य जितना अधिक प्रचलित है उतना ही अधिक मानवप्रजाओं का पतन और विभाजन बढ़ता चला जा रहा है।

असत्य एक ऐसी वबा है जिसने पृथिवी और मानवजाति के न केवल टुकड़े टुकड़े कर दिए हैं, उसने उन्हें सर्वतः भ्रष्ट कर दिया है। असत्य ने मानवजीवन को संकटापन्न कर दिया है, और

फिर भी लोगों को असत्य के प्रति इतनी आसक्ति है कि वे उससे छुटकारा पाने का कोई साधनोपाय नहीं करते हैं। पति-पत्नी, भाई-बहिन, पिता-पुत्र, अध्यापक-विद्यार्थी, नेता-जनता, स्वामी-सेवक, सभी के बीच में असत्य अटखेलियां कर रहा है।

सत्य ही है जिसकी व्याप्ति से विश्व की सारी प्रजा स्वच्छ और सुन्दर बन सकती है। असत्य अन्तःकरण को मलिन और कलुषित रखता है। सत्य अन्तःकरण को नितान्त निर्मल और स्थिर रखता है। संसार में कोई सम्प्रदाय नहीं है जिसने सत्य की मान्यता न की हो, और कोई सम्प्रदायप्रवर्तक नहीं है जिसने अपने अनुयायियों को सत्य के पालन की प्रेरणा न की हो। फिर भी संसार में इतना असत्य क्यों है ?

दो ही वर्ग हैं जो संसार में सत्य की स्थापना कर सकते हैं। वे हैं अध्यापक और उपदेशक, टीचर ऐंड प्रीचर। दोनों के ही लिए यह परम आवश्यक है कि वे आत्मना सत्यनिष्ठ होकर सत्य को मानवजीवन का एक स्वाभाविक संस्कार बना दें। मानवता और मानवधर्म के प्रचारक सत्य को मानवों के व्यवहार का एक अडिग आधार बनाएं। राजनीतिज्ञ राजनीति के क्षेत्र में सत्य की प्रतिष्ठा करें। व्यापार, व्यवसाय में व्यापारी और व्यवसायी शुद्ध सत्य का प्रवेश होने दें।

आस्तिकों को यह स्मरण कराइए कि उनका उपास्य देव, सर्वान्तर्यामी परमात्मा सत्यस्वरूप है। सत्य से विमुख रहकर वे न परमात्मा के प्यारे बन सकते हैं, न वे परमात्मा के दर्शन के अधिकारी बन सकेंगे।

माता-पिता सत्यनिष्ठ हो जाएं तो गर्भ से ही मानवसन्तति में सत्य के सुसंस्कार समंकित होने लगें। गृहस्थों के गृहों में सत्य की प्रतिष्ठा हो जाए तो परिवार परिवार करके सारा संसार सत्य के संस्कारों से सुसंस्कृत हो जाए !

ससार सत्यस्वरूप परमात्मा की सत्य कृति है। सत्य प्रकर्ता की इस सत्य कृति में आदि में केवल सत्य ही सत्य था, असत्य का कहीं नामो-निशान न था। तब सारी पृथिवी पर सत्य का राज्य था, जीवन के प्रत्येक पार्श्व में सत्य की संव्याप्ति थी। तब यह पृथिवी एक अभिन्न गृह थी, और सारी मानवप्रजा एक अभिन्न परिवार थी। तब किसी भी देश के मानव बिना रोक-टोक किसी भी देश में जाकर उसके नागरिक बन जाते थे। असत्य ने ज्यों ज्यों मानवों के मानसों में स्थान पाया त्यों त्यों स्थितियां बिगड़ती चली गईं। अब स्थिति यह है कि एक देश के मानव किसी दूसरे देश की यात्रा भी करना चाहें तो सन्देहों की दीवारें सब ओर मार्ग रोके खड़ी दिखाई देती हैं।

असत्य से नहीं, सत्य से ही इस वसुन्धरा के वसु पृथिवी-वासियों के लिए सुखकर, शान्तिकर, स्वस्तिकर और आनन्दकर होंगे। सत्य से ही अदिति अपने सकल मानवपुत्र-पुत्रियों के लिए विशाल लोक, निर्बाध क्षेत्र और निर्बाध सम्पदाएं प्रदान करेगी।

सम्पूर्ण पृथिवी को एक सुपावन गृह और समग्र मानवप्रजा को एक परिशुद्ध परिवार बनाने का दूसरा साधन है 'ऋतमुग्रम्,' उग्र ऋत।

'ऋत' शब्द वैदिक वाङ्मय का बहुत प्रसिद्ध, अनेकार्थवाची शब्द है। 'ऋत' शब्द का ही रूपान्तर अंगरेजी का प्रसिद्ध 'राइट' शब्द है जिसका अर्थ है सही। जो कुछ सही है वह सब ऋत है। जो कुछ गलत है वह सब अनृत है। जो कुछ सही है वह सब सदाचार है। जो कुछ गलत है वह सब दुराचार है। 'उग्र' का अर्थ है प्रचण्ड, उच्च, सुदृढ़, मजबूत। 'ऋत' शब्द में मूलतः यही भाव अन्तर्निहित है। यह भाव इतना व्यापक है कि उसमें सब शुभ, श्रेष्ठ और महान् समा जाता है। उदा-

हरणार्थ निम्न तालिका का अवलोकन कीजिए ।

ऋत [सही, सदाचार]	अनुत [गलत, अनाचार]
सत्य	असत्य
संयम	असंयम
धर्म	अधर्म
शुचिता	अशुचिता
कर्तव्यनिष्ठा	कर्तव्यहीनता
सन्तोष	असन्तोष
यौन शुचिता	यौनअशुचिता
अर्थशुचिता	अर्थ-अशुचिता
श्लीलता	अश्लीलता

‘ऋत’ का अर्थ ऋताचार अथवा सदाचार भी है । ऋत की असंख्य-नामा तालिका एक शब्द, ‘सदाचार’ में समा जाती है । सदाचार विश्वसुधार की कुंजी है । पृथिवी पर उच्च और मजबूत सदाचार की प्रतिष्ठा होजाए तो विश्वविनाश की काली रेखाएं विश्वकल्याण की श्वेत रेखाओं में बदल जाएं । शिक्षा और मानवधर्म-प्रचार, ये दो प्रमुख साधन हैं जिनके द्वारा इस मही पर सदाचार की प्रतिष्ठा हो सकती है । अध्यापक और उपदेशक यदि शुद्ध सदाचारी बन जाएं तो बड़ी आसानी से सम्पूर्ण मानवप्रजा में पावन मानवाचार की, शुद्ध सदाचार की बेलें फैल जाएं ।

सदाचार के विषय में सभी देशों की मान्यताएं समान हैं । अच्छाई सर्वत्र अच्छाई है, और बुराई सर्वत्र बुराई है । देश देश के लोकाचार, शिष्टाचार, विधि-विधान और रीति रिवाज भिन्न-भिन्न हो सकते हैं किन्तु सदाचार की रूपरेखाएं सर्वत्र सर्वथा अभिन्न हैं । कौन-सा देश है जिसके समझदार देव-देवियां परस्त्रीगमन और परपुरुषगमन को अच्छा समझते हों ? क्या

कोई भी सभ्य समाज है जो व्यसनों और विलासों को हानिकारक न मानता हो ? कितने शोक और शर्म की बात है कि अपने को समुन्नत समझनेवाले राष्ट्र भी सदाचार की ओर से न केवल उदासीन हैं अपि तु मलिनाचार की खुली छूट दे रहे हैं। वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अर्थ हर बुराई की छूट नहीं है।

मत-मतान्तरों की साम्प्रदायिक मान्यताओं ने संसार में दुराचार की जितनी अभिवृद्धि की है उतनी शायद अन्य किसी बात ने नहीं की। सदाचार की विश्वव्याप्ति में साम्प्रदायिक अष्ट मान्यताएं बड़ी भारी बाधाएं हैं। सारी पृथिवी पर मानव-महिमा, मानवता तथा मानवधर्म की शिक्षा द्वारा ही उस अभिशाप से मानवजाति का त्राण होगा। उक्त त्रित के सर्वत्र व्यापने से ही मानवजाति की समस्त चरित्रहीनताएं समाप्त होंगी। वेद ही वह मानवधर्म-शास्त्र है जो मानवजाति को पशुता की पाश, और दुराचार के अभिशाप से मुक्त कर सकेगा। वेदप्रचार और वेदाचार से ही विश्व में उच्च सदाचार की स्थापना होगी। वेदोपदेशों में वह शक्ति है जो, मानव मानव को मानवमहिमा, मानवता तथा मानवधर्म का बोध कराकर और सम्पूर्ण मानव जाति को शोधकर, उन्हें सत्य सदाचार से अलंकृत कर सकती है।

सही क्या है और गलत क्या है, इसका बोध यद्यपि सबको है फिर भी इस विषय का सम्यक् बोध मानवप्रजा को वेदों के आश्रय से ही होना सम्भव है। विश्व वेद की शिक्षाओं को स्वीकार करने के लिए आज बिल्कुल तयार है। अफसोस कि वेदशिक्षकों का आज उतना प्राचुर्य नहीं है जितना होता चाहिए। जो हैं भी उन्हें उतने साधन उपलब्ध नहीं हैं कि वे सब भ्रमों और चिन्ताओं से मुक्त होकर सभी देश-प्रदेशों में जाएं और सर्वत्र साचार वेदप्रचार कर सकें। बे-सरो-सामान होते हुए भी, उन्हें स्वात्म-प्रेरणा से प्रेरित होकर स्वल्प साधनों के साथ

ही इस व्यापक और महान् साधना के लिए संनद्ध होकर निकलना चाहिए, और सार्वभौम सदाचारकरण की साध में जुट जाना चाहिए ।

मन्त्र में 'सत्यं बृहत्' के बाद 'ऋतमुग्रम्' पढ़ा गया है । व्यापक सत्य ही उच्च सदाचार की व्याप्ति कर सकेगा । मनसा, वाचा, कर्मणा जो सत्यनिष्ठ और सदाचारी हैं वे ही विश्व को सदाचार में प्रतिष्ठित कर सकेंगे ।

सारी पृथिवी पर सत्य और सदाचार की व्याप्ति सरल साध नहीं है, सर्वातिशय दुस्तर साध है । इतनी विशाल पृथिवी और उस पर निवास करनेवाली अरबों की जनसंख्या ! देखने और सुनने में यह कार्य सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है । इस असम्भव को दीक्षा द्वारा सम्भव बनाया जा सकता है । ब्रतेन दीक्षामाप्नोति (यजुर्वेद १६.३०), मानव व्रत से दीक्षा को प्राप्त करता है । किसी भी श्रेष्ठ और महान् [गुड ऐंड ग्रेट] साध की सिद्धि के लिए व्रत धारण करना दीक्षा है । व्रत धारण करके जो दीक्षा लेते हैं उनकी संज्ञा 'दीक्षित' है । गृहस्थ और विरक्त अधिकाधिक संख्या में इस पृथिवी को एक पावन गृह, और पृथिवीवासिनी सम्पूर्ण मानवप्रजा को एक परिशुद्ध परिवार बनाने के सुव्रत से दीक्षित होते हुए जब साधनारत होंगे तो लक्ष्य की सिद्धि प्रतिक्षण निकट से निकटतर होरही होगी ।

दीक्षित बौद्ध भिक्षु सारे एशिया में बुद्ध-मत फैला सके, मुस्लिम मिशनरी एशिया और यूरोप में इस्लाम को फैला सके, और क्रिश्चियन मिशनरी सारी पृथिवी पर ईसाई मत फैला सके तो वैदिक मिशनरी वेदप्रतिपादित मानवधर्म का साचार प्रचार करके इस पृथिवी को एक वैदिक गृह और परिवार क्यों नहीं बना सकते ? सभी वैदिक परिवार अपने अपने क्षेत्र में सभी

वर्ग के सभ्य-सभ्याओं का मानवीकरण करेंगे, और वैदिक विरक्त देश-प्रदेशों में उस साध की साधना में संलग्न होंगे तो वे समग्र मानवप्रजा को मानवधर्म में दीक्षित करके इस भूलोक को मानवमहिमा से सुशोभित करने में अवश्य सफल होंगे ।

मानव बनो और मानव बनाओ ।

इस पृथिवी पर स्वर्ग सजाओ ।

व्रतों का निर्वहन तप के आश्रय से होता है । दीक्षित साधक जितने अधिक तपस्वी होंगे उतनी ही तत्परता से वे साधना करेंगे, और उतनी ही तीव्रता से वे पृथिवी पर सत्य और सदाचार से युक्त मानवधर्म का प्रसार और मानवजाति का सुधार करेंगे ।

जिस पृथिवी पर हम निवास करते हैं वह वसुन्धरा है, असंख्य वसुओं, अक्षय ऐश्वर्यों और अमित सम्पदाओं की खान है । पृथिवीवासिनी समग्र मानवप्रजा तप के आश्रय से वसुन्धरा का दोहन करे, और प्राप्त वसुओं का पारिवारिक भावना से देश-देशान्तरों में पारस्परिकता के साथ आदान-प्रदान करे तो किसी भी देश में किसी भी प्रकार का अभाव न होने पाए । मानव-जीवन की आवश्यकताओं का अभाव अथवा कमी ही है जो छीना-भपटी और युद्धों को जन्म देती है । हर वस्तु हर देश में नहीं हो सकती है किन्तु हर वस्तु हर जगह पहुंचाई जा सकती है, बशर्ते कि सारी पृथिवी पर वसुधैव कुटुम्बकम् की मानवीय भावना भावित हो ।

मानवों की जीवनपद्धति को भी तपोमय बनाया जाए । आरामतलबी ही विलासों और व्यसनो को जन्मदात्री है । व्यसन और विलास मानवजीवन को क्षत-विक्षत कर देते हैं । व्यसन और विलास मानवों की प्रकृति को पाशविक, आसुरी और अमानवी बना देते हैं । उसका परिणाम यह होता है कि

मनुष्य विषयी, गन्दी नालियों के गन्दे कीड़े बन जाते हैं। तपसा पूतं तपसा विभूतम्। तप से मानव पवित्र होते हैं। तप से ही भौतिक और आत्मिक विभूतियों की उपलब्धि होती है। तपोमय जीवनशैली के आश्रय से ही मानवजाति मानवता, आस्तिकता और धार्मिकता से समलंकृत रहती है।

‘ब्रह्म’ शब्द का प्रयोग मन्त्र में विवेक अर्थ में हुआ है। शिक्षा और उपदेश के द्वारा मानवों के विवेक को सजग रखने पर ही मानवप्रजा में सत्य और सदाचार, दीक्षा और तप की प्रतिष्ठा होती है। विवेक का अभाव ही है जो मानवों को मानवाचार से गिराकर पापाचार के गर्त में पटक देता है। विवेक के प्रकाश में ही करणीय-अकरणीय, उचित-अनुचित, आचार-अनाचार का भान और ध्यान रहता है। अध्यापक और उपदेशक, टीचर और प्रीचर, माता और पिता जब मानव-सन्तति को सही शिक्षोपदेश करते हैं तभी मानवप्रजाएं विवेकी रहकर सुधार के पथ पर अग्रसर रहती हैं।

यज (पूजा-संगतिकरण-दानेषु) धातु से ‘यज्ञ’ शब्द बना है। पृथिवीस्थ सभी देश और राष्ट्र एक दूसरे का पूजन [आदर] करें; एक दूसरे के प्रति सद्भाव तथा सौहार्द के साथ सुसंगत रहें; ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, विविध वस्तुओं का दानादान करें, नेतृवर्ग और ज्ञानी जन ऐसा सुखद वातावरण सारी पृथिवी पर बनाए रहें तो सम्पूर्ण मानवसन्तति का वर्तमान और भविष्यत् समुज्ज्वल, सुखद और शान्तिमय बना रहे।

मन्त्रोक्त छह साधनोपायों से समस्त देशों और देशवासियों को सार्वभौम नागरिकता के सूत्र में पिरोकर सारी पृथिवी पर सभी मानवों का निर्बाध गमन-आगमन, निवास-आवास, व्यापार-व्यवसाय, अध्ययन-अध्यापन, खान-पान, शादी-ब्याह हो तो, निश्चय ही, हम सब मानवों के भूत और भविष्यत् की स्वामिनी,

यह पृथिवी हम सबके लिए सुख, सौभाग्य, समृद्धि और सम्पन्नता का एक निर्बाध विशाल लोक बन जाए ।

बृहत् सत्य, दृढ़ सदाचार,
दीक्षा, तप, विवेक, यज्ञ
पृथिवी को धारण करते हैं ।
भूत भविष्यत् की स्वामिनी,
वह पृथिवी
करे हमारे लिए सम्पादन
लोक विशाल—निर्बाध ।

१० एक गृह : एक परिवार

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी
यथोक्तसम् । सहस्र धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव
धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ अथर्ववेद १२.१.४५
पृथिवी पर निवास करनेवाले सर्वमानवो ! सुनो, वेद-माता
तुम्हें एक दिव्य सन्देश दे रही है—(वि-वाचसम्) विविध बोलियां
बोलनेवाले, (नाना-धर्माणम्) नाना धर्मों के पालन करनेवाले
(जनम्) जनसमूह को (यथा-ओक्तसम्) यथा-गृह (बहु-धा)
बहुत प्रकार से (बिभ्रती) धारण करती हुई (पृथिवी) पृथिवी
(ध्रुवा-इव धेनुः अन्-अप-स्फुरन्ती) निश्चला, दुधार गौ के
समान अ-छटपटाती हुई (मे) मेरे लिए, मुझ मानवप्रजा के
लिए, जन जन के लिए (द्रविणस्य सहस्रम् धाराः) ऐश्वर्य की
असंख्य धाराएं (दुहाम्) दुहे ।

हमारी इस पृथिवी पर अनेक देश हैं । देश देश की अपनी अपनी
भाषाएं और बोलियां हैं, अपनी अपनी धार्मिक परम्पराएं और

मान्यताएं हैं। सर्व मानवों को पृथिवी माता की गोद में ऐसे सौहार्द के साथ निवास करना चाहिए जिस प्रकार एक गृह तथा परिवार में भिन्न भिन्न विचारों के जन निवास करते हैं, और वस्तुओं को आत्मीयता के साथ बांटकर यथाभाग सेवन करते हैं। तभी छीना-भपटी और मार-काट का अभिशाप समाप्त होगा, पृथिवी पर स्थिरता और स्थायी शान्ति की स्थापना होगी। तभी इस पृथिवी के सुपावन स्तनों से, दुधार गौ के समान, असंख्य धनैश्वर्यों तथा अन्न-सम्पदाओं की वे धाराएं प्रवाहित होंगी जिनसे सभी सुसम्पन्न और सन्तुष्ट होंगे। तब सभी देश एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे होंगे। तब न कहीं किसी प्रकार का अभाव होगा, न टकराव होगा, न दुर्भाव होगा।

विविध-भाषी, नाना-धर्मी जनसमूह को,

यथागृह, बहु प्रकार से धारण करती हुई

पृथिवी, ध्रुवा धेनु के समान, अछटपटाती

हुं मेरे लिए धारा असंख्य ऐश्वर्य की।



पाठक से

वेद-संस्थान इस पुस्तक की विषयवस्तु, लेखनशैली और आकार-प्रकार के बारे में आपके विचारों के लिए आभारी होगा। अन्य कोई सुझाव आप देना चाहें तो उन्हें जानकर भी हमें प्रसन्नता होगी। हमारा पता है : बाबू मोहल्ला, ब्यावर रोड, अजमेर, भारत।

व्याख्यात मन्त्रों की अकारादि-सूची

मन्त्र प्रतीक	मन्त्र-संख्या	पृष्ठ-संख्या
असद् भूम्याः	अ ४.१६.६	८
इन्द्र क्रतुं न आ	ऋ ७.३२.२६	१४
जनं बिभ्रती बहुधा	अ १२.१.४५	५६
तन्तुं तन्वन् रजसो	ऋ १०.५३.६	३०
त्रितः कूपे ऽवहितो	ऋ १.१०५.१७	४
नू मर्तो दयते	ऋ ७.१००.१	११
यूयं....नः	ऋ ७.१.२०	२३
विश्वा....सहस्व	य २७.६	४
सत्यं बृहदतमुग्रं	अ १२.१.१	४५
स्वस्ति मात्र उत पित्रे	अ १.३१.४	१७



आव
होग
भी



जन्म : १५ नवम्बर,
(अजमेर, दिल्ली)
के मर्मज्ञ व्याख्यात
संन्यासाश्रमी सन्त ।
और हृदय को छू लेने
जो तत्काल आकर्षित
स्नेह, सरलता से ।

साधनामय, भक्ति और निष्ठा से ओत-प्रोत
ललित, प्रसादगुणयुक्त, अनावश्यक विस्तार से

‘विदेह’ का जीवन वेद और योग को समर्पित है । उनका
दृष्टिकोण देश की सीमाओं में अतीत, सार्वभौम और अखिलमानवता-
परक है । उनकी वाणी और लेखन का प्रमुख स्वर मनुष्य का नैतिको-
त्थान है ।

‘विश्व-सुधार’ में ‘विदेह’ के लोकमंगलार्थ विह्वल, कर्तव्य हृदय
का स्पंदन सुनाई देता है । वेद मन्त्रों के आधार पर, विश्व के सभी
देशों के मानवों को नैतिकता का जो सन्देश इसमें दिया गया है वह
तात्कालिक निदान होते हुए भी, वस्तुतः, शाश्वत मानवधर्म का साररूप
नवनीत है । भारत की संस्कृति में विद्या, लक्ष्मी, बल, आदि सबसे
ऊपर चरित्र को आदर दिया गया है । विश्व का वर्तमान संकट चरित्र
का संकट है । यह पुस्तक संयुक्तराष्ट्रसंघ, प्रत्येक देश के कर्णधारों और
चिन्तकों द्वारा गम्भीरता से विचारने के लिए प्रभूत सामग्री से
भूर-पूर है ।

दो रूप